श्री दशम-ग्रंथ दर्शन

डा. गोविन्द नाथ राजगुरु

गोबिन्द सदन
गदाईपुर, महरौली,
नई दिल्ली-110030

श्री दशम-ग्रंथ दर्शन

'खालसा' तीसरी जन्म शताब्दी पुस्तक-माला - 5

श्री दशम-ग्रंथ दर्शन

डा. गोविन्द नाथ राजगुरु

गोबिन्द सदन
गदाईपुर, महरौली,
नई दिल्ली–110030

SHRI DASAM-GRANTH DARSHAN (HINDI)

by

Dr. Govind Nath Rajguru

M.A., Ph.D.

Formerly Professor, Hindi Department, Punjab University, Chandigarh

40, Sect. 18, Panchkula

पहली बार - **'खालसा' की तीसरी जन्म शताब्दी**

13 अप्रैल 1999

प्रकाशक :

गोबिन्द सदन इन्स्टीच्यूट फार एड्वांस्ड स्टडीज़
इन कम्पेरेटिव रिलिजिंन

गदाईपुर, महरौली,
नई दिल्ली - 110030

मुद्रक :

सुन्दर प्रिन्टर्स

पहाड़ गंज, नई दिल्ली-110055

'खालसा'
सिरजना की
तृतीय
जन्म शताब्दी की
पावन स्मृति
को समर्पित

विषय-क्रम

नोटः लेखक अपने विचारों का स्वयं उत्तरदायी है।

प्राक्कथन

पंजाब में भक्ति आंदोलन के प्रवर्तक श्री गुरु नानक देव जी ने अपनी वाणी के द्वारा जहाँ जिज्ञासुओं के उद्विग्न मन को शांत कर उन्हें आध्यात्मिक विकास के मार्ग पर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी थी, वहाँ उन्होंने देश-वासियों की दबी हुई धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक भावनाओं को झंझोड़ कर आत्मगौरव की पहचान कराई थी। यह धर्मांदोलन दश गुरु साहिबान के द्वारा दो शताब्दियों तक उत्तरोत्तर विकसित होता रहा। परन्तु विपरीत राजनैतिक परिस्थितियों और बर्बर शासकीय अत्याचारों के कारण आत्म-रक्षा का गंभीर प्रश्न सामने आया। फलस्वरूप माला के साथ कृपाण को भी चिरसंगिनी बनाना पड़ा। सिक्ख-धर्म के चरित्र एवं स्वरूप को बदलने और भक्ति में शक्ति को समाविष्ट करने के लिए दशम गुरु जी ने सन् १६९९ ई: की वैशाखी को खालसा की सृजना की जो संत-सिपाही के रूप में सामने आया और आगामी इतिहास इसी की गतिविधियों एवं पराक्रमों का लेखा-जोखा बन गया। खालसा सृजना की उसी महान ऐतिहासिक घटना की तृतीय शताब्दी को मनाने के उद्देश्य से गुरु गोबिन्द सिहं जी के व्यक्त्तित्व, कृतित्व, चिंतन, धर्म-साधना और जुझारु गतिविधियों से संबंधित विभिन्न पक्षों पर पुस्तकें प्रकाशित करने की योजना श्री बाबा विरसा सिंह जी के तत्त्वावधान में बनाई गई है। उसी पुस्तक-माला की यह पुस्तक महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

'दशम-ग्रंथ' गुरु गोबिंद सिंह का गौरव ग्रंथ है। इस वृहदाकार ग्रंथ में गुरु जी की विभिन्न पक्षीय एंव बहुआयामी रचनाएँ सँकलित हैं। इस ग्रंथ पर अब तक दो दर्जन शोध-प्रबंध लिखे जा चुके हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में संस्कृत और हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान डा. गोविंद नाथ राजगुरु ने दशम ग्रंथनीय रचनाओं के संरचना-तंत्र एंव प्रतिपाद्य का संक्षिप्त परन्तु सारगर्भित दिग्दर्शन कराया है। हम उनके आभारी हैं।

हमें विश्वास है कि दशम ग्रंथ के अध्ययन में रुचि रखने वाले पाठक हमारे इस प्रयास से लाभान्वित होंगे।

गोबिंद सदन **(भाई) कृपाल सिंह**
प्रथम वैशाख, 2056

भूमिका

इसे एक विचित्र संयोग ही कहा जाएगा कि 'बचित्र नाटक' के रचयिता-सूत्रधार तथा नायक (दशम गुरु जी) के पद-चिन्हों का अनुगमन मैं जाने-अनजाने अपने शैशव से ही करता आया हूं।

इस सांस्कृतिक अनुगमन के अनंत क्षण मेरे भाव-जगत् की चिर-संचित बहुमूल्य निधियां हैं।

जन्म नाम-कुंभ राशि के कारण-'गोविन्द' रखा गया। दो शब्द वंश-परम्परा से मुझे मिले, 'नाथ' और 'राजगुरू'। इस प्रकार सर्वप्रथम नाम के रुप में दशम गुरु जी का प्रसाद मुझे मिला।

मेरे शैशव के प्रारम्भिक लगभग दो दशक हिमाचल प्रदेश के 'नाहन' और 'पांवटा' साहिब के साथ जुड़े रहे। मैं कभी नहीं भूल सका 'नाहन' के शमशेर हाई स्कूल और उसके विशाल चौगान को। इस चौगान के दक्षिणी छोर पर स्थित है, दशम गुरु जी के नाहन पधारने की स्मृति में स्थापित एक इतिहासिक गुरुद्वारा। इस गुरुद्वारे के परिसर से उठती 'भजन' (सबद) लहरियों की अनुगूंज आज भी मेरे भाव-जगत् को गुंजित करती रहती हैं।

किशोरावस्था में नाहन से ऊपर पहाड़ों के पार 'रेणुका' और वहां से 'कपाल-मोचन' की रोमांचकारी पैदल यात्रा भी मेरी स्मृति में सुरक्षित है।

उन्हीं दिनों 'पांवटा साहिब' और वहां से 'भंगाणी' भी जाना हुआ। इस प्रकार मुझे मिला, गुरू जी के तपःपूत साधना स्थल, साहित्य सृजन के पुनीत क्षेत्र तथा उनकी प्रथम सामरिक विजय के परिवेश में सांस लेने का एक दुर्लभ अवसर।

'बचित्र नाटक' में दशम गुरु जी ने जहां कहीं भी इन स्थानों का नामतः उल्लेख किया है, उन स्थलों पर मैं भाव विभोर हो उठता हूं। आगे चल कर जब पी. एच. डी. के लिए शोध-विषय का चुनाव करने की बात आई। तब कितने ही अन्य विषयों को छोड़कर मैंने चुना, 'गुरुमुखी लिपि में उपलब्ध हिन्दी गद्य'।

इस सिलसिले में पंजाब की पाण्डु-लिपियों का गम्भीर तथा व्यापक

अनुसन्धान एवं उनके अध्ययन-विश्लेषण करने का अवसर मुझे मिला।

पाण्डु-लिपियों के इस अथाह समुद्र के मन्थन से जो एक अनुपम भाव-विग्रह मेरे हृत्-पटल पर उदित हुआ, वह था गुरु-घर की समग्र चिन्तन धारा का एक मूर्तिमान फलितार्थ! अर्थात् दशम गुरु जी की दृष्टि तथा सृष्टि (खालसा) का साक्षात्कार मुझे इन पाण्डु-लिपियों के माध्यम से ही हुआ।

पंजाब के मनीषियों ने जिस भाव-प्रवणता से गुरु-घर की सम्पदा ('वाणी') और उसके तात्त्विक व्याख्यान के जिस सारस्वत यज्ञ का दिव्य अनुष्ठान किया, उस यज्ञ की साहित्यिक महिमा तथा सांस्कृतिक गरिमा का आकलन कर पाना सरल नहीं है। साथ ही जब मैं अपने हृत्-चक्षुषों[1] से समस्त मानवता के इतिहास-फलक पर 'सरबत्त' का भला जैसा महान् संकल्प लेकर उदित होते हुए एक दिव्य प्रभापुंज (श्री दशम गुरू जी) का बौद्धिक साक्षात्कार करता हूं और आकलन करता हूं इस महान् मनीषी के अनुपम साहित्यिक अवदान का और मानव-मंगल के प्रति इसकी प्रतिबद्धता का, तो लगता है कि शस्त्र और शास्त्र दोनों ही क्षेत्रों में अपनी अपूर्व उपलब्धियों का इतना महान् श्रेय शायद ही कोई व्यक्ति अर्जित कर पाया हो।

कालांतर में, पंजाब के कई कॉलेजों और अंततः पंजाब विश्वविद्यालय में अध्यापन व शोध-कार्य करते-कराते समय भी दशम गुरु जी की शब्द-ब्रह्म-साधना के विभिन्न पक्षों पर निरंतर मनन-चिंतन के अतिरिक्त विभिन्न विद्वत् समागमों में लिखित अथवा वाचिक रुप में गुरू जी के विचार-जगत् की मीमांसा करने वे भी अनेक अवसर मुझे मिलते रहे।

इस वर्ष गोबिंद सदन, दिल्ली के संस्थापक बाबा जी 'श्री विरसा सिंह जी' ने श्री दशम ग्रंथ के संबंध में एक पुस्तिका हिन्दी में प्रस्तुत करने की प्रेरणा मुझे दी। समय कम था। फिर भी जी जान से अपने इस प्रिय विषय पर - एक बार फिर जुट गया। फलस्वरूप 'पत्र-पुष्प' रूप यह पुस्तिका श्री दशम गुरु जी के चरणों में अर्पित कर रहा हूं।

इस पुस्तिका के संबंध में यह निवेदन करना आवश्यक जान पड़ता है :-

(1) चूंकि गुरु जी ने श्री दशम ग्रंथ में संकलित अपनी रचनाओं में स्थान-स्थान पर प्रतिपाद्य की संक्षिप्त प्रस्तुति को ही लेखकीय 'संहिता' का प्रमुख तत्व स्वीकार किया है, इसलिए इस पुस्तिका में सर्वत्र विषय-विस्तार की अपेक्षा-लगभग सूत्र संक्षिप्त रुप-को ही अपनाया गया है।

---

1. सर्वत्र से विकसित। अशेष मानवता का बोधक 'प्रत्यय'-(संकल्प)।

(2) श्री दशम ग्रंथ के संबंध में प्रचलित अनेक विवादों को सांकेतिक रूप से ही छुआ गया है। इन विवादों के निर्णय का भार अभिनव दृष्टि, नव-सामग्री तथा नवीन तथ्यों की उपलब्धि से सम्पन्न भावी इतिहासकारों-अनुसंधात्ताओं को सौंप देना, अधिक तर्क-संगत होगा।

(3) श्री दशम ग्रंथ को प्रामाणिक रूप से पुनः संपादित कर, संभवतः, अनेक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है, यही है इस लेखक का विनम्र सुझाव।

(4) श्री दशम ग्रंथ की सम्पूर्ण रचनाओं पर समग्रतः विचार कर पाना भी, इस पुस्तिका के लघु आकार में सम्भव नहीं था। फलतः श्री दशम ग्रंथ की सर्वमान्य रचनाओं के साथ-साथ कतिपय बहुमान्य रचनाओं का ही संक्षिप्त-परन्तु सोदाहरण-परिचय इस में देने का प्रयास किया गया है।

(5) गुरू जी की प्रसिद्ध फारसी रचनाओं - (ज़फर नामह और हिकायात) को फारसी से अपने अपरिचय के कारण छोड़ देना पड़ा। इनके संबंध में यंत्र-तंत्र-प्रसंग के अनुरोध पर - यत् किंचित् कहा ज़रुर गया है।

(6) 'चरित्रोपाख्यान' को आधुनिक दृष्टि से जांचने परखने का प्रयास इस पुस्तिका में किया गया है। वस्तुतः यह रचना तत् कालीन सामन्ती समाज का एक वीभत्स परन्तु यथार्थ-चित्र प्रस्तुत करती है । नारी के अमानवीय शोषण की करूण-कथा को कुछ उदात्त आयाम प्रदान करने वाली नारियों की पुण्य गाथाओं के माध्यम से गुरु जी ने नारी-जागरण को अपना आशीर्वाद दिया है, यह मेरा विश्वास है।

अन्त में, गोबिंद सदन, दिल्ली के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूं। इस संस्था ने एक बार फिर मुझे दशम गुरु जी का पुण्य-स्मरण करने का अवसर प्रदान किया। तदर्थ धन्यवाद।

आभारी हूं डॉ. रत्न सिंह जग्गी का जिन्होंने इस पुस्तिका की आवश्यक जांच पड़ताल की।

अपनी आयु के इस अंतिम पड़ाव पर दशम गुरु जी के श्री चरणों में अपनी यह तुच्छ अक्षरांजलि सादर समर्पित कर रहा हूं।

इति शुभम्।

गोविन्द नाथ राजगुरू

अध्याय-१

दशम गुरु जी : व्यक्तित्व

दशम गुरु गोबिन्द सिंह जी भारतीय इतिहास के उस समय- बिंदु पर अवतरित हुए थे, जब भारतीय अस्मिता विदेशी शासकों के दानवी अत्याचारों तथा अपनी आंतरिक असंगतियों-विसंगतियों के परिणाम स्वरुप बुरी तरह क्षत-विक्षत हो कर लगभग नाम-शेष होने जा रही थी।

उन अंधेरी घड़ियों में दशम गुरु जी के रूप में सारस्वत प्रतिभा तथा अतुल पराक्रम से समन्वित एक नव-प्रकाश-पुंज 'पटना-सहर' में अवतरित हुआ (संवत् १७२३। १६६६ ई०)। दशम गुरु जी ने लिखा है:-

तही प्रकास हमारा भयो,
पटना शहर विखे भव लयो।
...मद्रदेस हमको ले आए।

(बचित्र नाटक : अध्याय ७)

बिहार (मगध) विशेषतः पटना ('पाटली पुत्र') और मद्र देस (पंजाब) के ऐतिहासिक तथा:- सांस्कृतिक सम्बन्धों का यह कदाचित् तीसरा चरण था।

इन संबंधों का सूत्रपात संभवतः तथागत बुद्ध के भिक्षुओं की 'नालंदा' (मगध) से लेकर 'तक्षशिला' (वर्तमानः टैक्सलाः पाकिस्तान) तक की विभिन्न कालिक पद-यात्राओं के साथ हुआ।

'पाटलीपुत्र' (पटना) से तथागत का सन्देश लेकर ये यायावर पंजाब और यहां से 'पक्थ' (वर्तमानः परव्तून) देशों से होते हुए अफ़ग़ानिस्तान और ईरान तक पहुंचे। अंततः मध्य एशिया के विभिन्न क्षेत्रों में तथागत की 'मध्यमा प्रतिपदा' का मानवीय उद्घोष गूंजने लगा।

गांधार-शिल्प की कलात्मकता से सम्पन्न तथागत की भव्य-मूर्तियों को स्थान-स्थान पर प्रतिष्ठित करते हुए इन बौद्ध भिक्षुओं ने न केवल 'धम्म' का ही इन क्षेत्रों में प्रचार-प्रसार किया, बल्कि इन जनपदों की प्रमुख भाषा (फारसी) को 'बुत' (बुद्ध = बुत) जैसा अभिव्यंजक शब्द भी प्रदान किया।

उत्तरवर्ती हयू-एन-त्सांग जैसे कितने ही यात्रियों ने भी पाटलीपुत्र से लेकर तक्षशिला तक सांस्कृतिक यात्राएं कीं। इसी संदर्भ में पंजाब के मैदानों, यहां के नदी-नदों और सब से बढ़ कर पंजाब के जन जीवन का एक जीवंत तथा प्रामाणिक चित्र भी इन यात्रियों ने प्रस्तुत किया।

'मगध' तथा 'मद्र देश' के सांस्कृतिक संबंधों के दूसरे चरण में मौर्य साम्राज्य के प्रधानमंत्री आचार्य चाणक्य ने अपने व्यक्तित्व तथा कृतित्व की अमिट छाप पंजाब के इतिहास-फलक पर अंकित की।

'यवन' (ग्रीकः यूनानी) आक्रमणताओं- घुसपैठियों- की बर्वरता से पीड़ित भारत के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र की जनता के दुःख दर्द को निकट से देखने परखने वाले थे, पाटलीपुत्र से आए आचार्य चाणक्य।

आचार्य चाणक्य संभवतः पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अफ़ग़ानिस्तान तक फैले पंजाब का, यहां के भौगोलिक परिवेश का, यहां के जनजीवन और यहां प्रचलित लोकतंत्र ('गण-राज्यों') की कार्य-पद्धति तथा इन लोकतंत्रात्मक 'गणों'[1], की समस्त प्रशासनिक क्षमताओं- अक्षमताओं का विशद विवरण प्रस्तुत किया।

आचार्य चाणक्य की प्रेरणा से सम्राट 'चन्द्रगुप्त की सेनाओं ने-स्थानीय जनता तथा गण-राज्यों की सक्रिय सहायता से यवन आक्रान्ताओं को भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमाओं से बाहर खदेड़ दिया। खेद है कि पंजाब के इतिहास-लेखकों ने आचार्य चाणक्य के पंजाब संबधी इस प्रामाणिक विवरण की अभी तक उपेक्षा ही की है।

आचार्य चाणक्य ने मद्र देश (पंजाब) के तत्कालीन राजनैतिक घटना-क्रम को लक्षित कर तक्षशिला विश्वविद्यालय के मंच से लोक शक्ति का आह्वान करने हुए कहा था।

"राष्ट्र की सुरक्षा के लिए शस्त्र उठाना हमारी पहली अपेक्षा है और शेष शास्त्र-चिंतन आदि हमारी उत्तरवर्ती अपेक्षाएं हैं :-

---

1. तत् कालीन पंजाब के प्रमुख 'गणराज्य' ये थे :

क मद्र-गण : मद्र लोक महाभारत-युग से ही पंजाब के शक्ति-शाली शासक रहे। पंजाब से बाहर 'मद्रास' (आधुनिक : चेन्नई) की स्थापना का श्रेय भी इन्हें दिया जाता है।

ख मल्ल-गण : मद्र लोगों का एक वर्ग 'मल्ल' नाम से प्रसिद्ध हुआ (मद्र=मल्ल)। पंजाब से बाहर 'मालवा' जनपदों की स्थापना का श्रेय इन्हें दिया जाता है।

इन 'गण-राज्यों' की प्रमुख विशेषता यह थी कि इनमें आनुवांशिक 'राज पद्धति' का प्रचलन नहीं था। विस्तार के लिए देखें : अर्थशास्त्र : पंजाबी अनुवाद। अनुवादक : डॉ. राजगुरू/भूमिका।

शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे, शास्त्र-चिन्ता प्रवर्तते।

आचार्य चाणक्य के इस सामयिक लोक-आवाहन की प्रतिध्वनि दशम गुरु जी के ऐतिहासिक फारसी पत्र[1] (ज़फर नामह) की इन पंक्तियों में भी सुनी जा सकती है:

चू कार अज़ हमह हीलते दर गुज़श्त।
हलाल अस्‌त बुरदन ब शमशीर दस्त।२२।

भाव यह कि जब शांति-स्थापित करने के सभी उपाय चुक जाएं तो तलवार उठा लेना न्याय और धर्म-संगत है।

पंजाब की विभिन्न कालिक दो समान परिस्थितियों में एक सा कर्तव्य निर्धारित कर इन दोनों महापुरूषों ने अपनी दूरदर्शिता का प्रमाण दिया है।

इतिहास ने इन दोनों महापुरूषों को पंजाब के संदर्भ में समान सा एक अन्य संयोग-बिंदु भी प्रदान किया है।

इतिहास साक्षी है कि आचार्य चाणक्य के लोक-आवाहन तथा संगठित जन एंव 'गण' शक्तियों के प्रबल प्रतिरोध के सामने (तथा कथित जगद् विजयी) सिकंदर को भी यहां से दुम दबा कर भागना पड़ा।

सिकंदर के बाद मध्ययुग में बाबर का बर्बर आक्रमण भारत पर हुआ। आदि गुरु नानक देव जी ने इस त्रासदी का आंखों देखा विवरण आदि ग्रंथ में दिया है। उन्होंने लिखा है कि 'मीर बाबर ने पाप की बारात लेकर भारत पर धावा बोला'। 'पाप की जंज लै काबुलहु धाइआ'। परन्तु 'पाप की यह बारात' कब तक अपनी ख़ैर मनाती। अपनी धर्मान्धता तथा अदूरदर्शिता के कारण तथा 'गुरु-घर' के बलिदानी तेजस्वी नेतृत्व में-विशेषतः दशम गुरु जी के आवाहन पर- 'खालसा' रूप धारण कर लेने वाली प्रबल तथा प्रचंड लोक शक्ति के उदित होने के कारण "बाबर की बारात" एक जनाज़े में बदल गई और जफ़रनामह के रूप में इसका फ़ातिहा पढ़ने का मौका इतिहास ने दशम गुरु जी को दिया। अस्तु।

व्यक्तित्व

दशम गुरु जी की आत्म-कथा (बचित्र-नाटक) तथा उनकी समस्त गतिविधियों के पर्यालोचन से उनके व्यक्तित्व की ये प्रमुख रेखाएं उभरती हैं:-

---

1. यह पत्र दशम गुरू जी ने औरंगज़ेब को लिखा था। इस पर आगे चर्चा की जाएगी। 'ज़फर नामह' का शब्दार्थ है, विजय-पत्र।

1. धर्म-योद्धा

सामान्यतः कतिपय रुढ़ियों, (मिथ्या) विश्वासों, (अनर्गल) कर्मकाण्ड तथा लोक निरपेक्ष परन्तु किसी काल्पनिक जगत् जंजाल के प्रति प्रतिबद्ध जीवन पद्धति को ही धर्म मान लिया जाता है। इस तथाकथित धर्म की एकांगी एंव संकीर्ण परिधि में मानव ने मानवीयता को प्रत्येक युग में अनेकशः तथा अनेकधा पददलित किया है।

परन्तु आदि गुरु श्री नानक देव जी (गुरु-घर) की आचार-विचार पद्धति ने धर्म के स्थूल, संकीर्ण तथा अमानवीय रुप के स्थान पर धर्म को लोक-मंगल के एक साधक-तत्व के रुप में स्वीकार किया। 'सरबत्त का भला'[1] कदाचित इस स्वीकृति के मूल में था। चूंकि यह स्वीकार मात्र वाचिक शब्द-जाल नहीं था, इस लिए लोक-मंगल की साधना हेतु अपने धन-धाम, अपनी पद-प्रतिष्ठा यहां तक कि अपने प्राणों की भी आहुति दे देना गुरु-घर में धर्म की कसौटी स्वीकृत हुई। पंचम गुरु अर्जुन देव जी तथा नवम गुरु तेगबहादुर जी ने आदि गुरु जी के आदेश का यथावत् पालन करते हुए समय आने पर अपने प्राणों का उत्सर्ग धर्म हेतु कियाः-

धरम हेत साका जिन कीआ।
सीस दीआ पर सिरर न दीआ। *(बचित्र नाटक)*

दशम गुरु गुरु-घर्र के इस महान् दाय के सच्चे उत्तराधिकारी सिद्ध हुए। उन्होंने लोक-मंगल (सरबत्त के भले) के लिए न केवल क़लम का ही सहारा लिया, वरन् आवश्यकता पड़ने पर विवश होकर अपनी तलवार से आततायियों के सिर भी क़लम किए।

दशम गुरु अपनी समस्त गतिविधियों का एक मात्र उद्देश्य 'धरम जुध्ध'[2] बताते हैं:-

अवर बासना नाहि प्रभ धरम जुद्ध के चाइ।

प्रतीत होता है कि गुरु जी ने नव समाज (शोषण उत्पीडन विहीन समाज) की संरचना के लिए धर्म अनुप्राणित एक सम्पूर्ण मानव का संकल्प प्रस्तुत किया। यह सम्पूर्ण मानव था, 'खालसा' !

---

1. 'सर्वत्र' से विकसित। सब। अशेष।
2. गुरू जी लिखते हैं :

'याही काज धरा हम जनमं, समझि लेहु साधू सभ मनमं,
धरम चलावन, संत उबारन, दुसट सभन को मूल उपारन।'

'खालसा' के अपने संकल्प को रुपायित करते हुए दशम गुरु लिखते हैं:-

जागत जोति जपै निस बासुर,
एक बिना मन नैकु न आनै।
पूरन प्रेम प्रतीति सजै, ब्रत
गोर[1] मढ़ी[2], मठ भूलि न मानै।
तीरथ, दान, दया, तप संजम,
एक बिना नहि एक पछाने।
पूरन जोति जगै घट मैं,
तब खालस[3] ताहि नखालस[4] जानै।

दशम गुरु जी : इतिवृत्त : प्रमुख बिंदु

1. पटना में जन्मः सनः- 1666
   पिताः नवम गुरु श्री तेगबहादुर जी,
   जननीः माता गुजरी जी
2. नवम गुरु जी की शहीदी के उपरांत आनन्दपुर में गुरु-पद पर प्रतिष्ठितः सन : 1675
3. यमुना किनारे 'पांउटा साहिब' (आधुनिक हिमाचल प्रदेश का एक इतिहासिक नगर) निवासः साहित्य सृजनः सनः 1685
4. पहाड़ी राजाओं के साथ पांउटा के पास 'भंगाणी' में युद्ध गुरु जी की प्रथम विजयः सनः 1688
5. 'नादौण' (कांगड़ाः हिमाचल प्रदेश) के युद्ध में विजयः सनः 1690
6. आनन्दपुर में 'खालसा' की स्थापना 'अमृत धारण' की पद्धति, विशिष्ट खालसाई आचरण संहिता का विधानः सनः 1699
7. अत्याचारी शासकों के साथ सशस्त्र संघर्षः चारों पुत्रों का वलिदान व माता गुजरी का बलिदान नांदेड़ (दक्षिण भारत) में गुरुधाम सिधारेः सनः 1708 ई०

---

1. ग़ोर = कब्र (फारसी) 2. 'मठ' से विकसित। छोटा मंदिर : समाधि 3. 'ख़ालिस' (अरबी) से विकसित। कबीर ने भी एक स्थान पर यह शब्द प्रयुक्त किया है, ***"कहु कबीर जन भए खालसे, प्रेम भगति जिह जा़नी'*** *(सोरठ)* 4. 'निखालिस'। शत प्रतिशत शुद्ध। नि (संस्कृतः) + खालिस (अरबी)

2. कर्म-योगी

इस संसार के समूचे कार्यकलाप को दशम गुरु जी-एक बीतराग सन्यासी की भांति-मात्र एक 'तमाशा'-ही समझते थे। वे लिखते हैं:-

मैं हौं परम पुरुख को दासा।
देखन आयो जगत तमासा। *(बचित्र नाटक)*

परन्तु जगत् के उतार-चढ़ाव, उठा-पटक और घृणित पाखंड आडंबर समूह को लक्षित कर वे चुप नहीं रह सके और इस अनर्थ परम्परा का पर्दाफाश करने के लिए उन्होंने शब्द-ब्रह्म की साधना की। वे लिखते हैं:-

जिह जिह बिधि मैं लखे तमासा,
चाहत तिन को कियो प्रकासा। *(बचित्र नाटक)*

जगत् के इस तमाशे को पंचम गुरु श्री अर्जुन देव जी 'बाजीगर' की 'बाजी', सांग (स्वांग) और भेख (रुपः परिवर्तन) प्रभृति रंगमंचीय शब्दावली के माध्यम से रेखांकित कर चुके थे:-

बाजीगर जैसे बाजी पाई,
नाना रूप भेख दिखलाई,
......सांग उतारि थंमिओ पासारा।

दुनिया के इस कारोबार को मिर्ज़ा ग़ालिब ने भी 'तमाशा' शब्द के माध्यम से ही समझाने की कोशिश की है:-

होता है शब-ओ-रोज़, तमाशा मेरे आगे।

दशम गुरु जी ने इस तमाशे को मनोरंजन के स्थूल धरातल से उठा कर इसे एक सार्थक नाटकीय वैचित्र्य के साथ प्रस्तुत किया। वस्तुतः दशम गुरु जी इस तमाशे (नाटक) के एक मूक तथा निष्क्रिय द्रष्टा मात्र नहीं थे। वे अपनी महनीय 'निर्गुण' (अद्वैत) वादी दृष्टि, अपनी अनुपम 'खालसा' सृष्टि अपने प्रचण्ड एंव प्रेरक 'जैतेग' के उद्घोष के साथ (लोक-कल्याण-निमित्त) इस मंच पर अवतरित हुए।

अंततः अपनी समूची लोक कल्याण भावना को 'धरम युद्ध' का सक्रिय रूप देकर गुरु जी तत्कालीन दारूण दानवी अत्याचारों के पूरे तंत्र को निष्क्रिय बना डालने वाले एक महान कर्म योगी के रुप में मानवीय इतिहास के भार्वमौम फलक पर प्रतिष्ठित हुए।

इस कर्मयोगी ने मानव मात्र के लिए स्वतंत्र आध्यात्मिक चिंतन की, अपनी विशिष्ट पूजा पद्धति के अप्रतिहत अधिकार की तथा भौतिक अम्युदय

एंव न्याय-संगत व्यक्ति स्वातंत्र्य की शाश्वत प्रति-भूति के रूप में अपने कर्म संबंधी संकल्प को प्रतिष्ठित किया है। वे कहते हैं:-

सुभ करमन ते कबहुं न टरौ।

गुरु जी के शुभ कर्मों की परिधि में मानव की सभी मलभूत आकांक्षाएं समाहित हैं। इन आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए वे एक ओर तो अध्ययन-अध्यापन, साहित्य सृजन तथा विद्वत् संरक्षण जैसे सारस्वत कार्यक्रमों का सूत्रपात करते हैं तो दूसरी ओर सामाजिक शोषण, दोहन तथा राजनैतिक उत्पीडन के विरूद्ध भी वे सदा खड्ग-हस्त रहते हैं।

भारतीय अस्मिता के घोर शत्रु औरंगज़ेब की अनेक दुरमिसन्धियों का लेखा जोखा इस कर्म योगी ने 'ज़फर नामह (विजय-पत्र) के रुप में लिख कर औरंगज़ेब को भेजा था।

गुरु जी ने इस पत्र में औरंगज़ेब को साफ़-साफ़ शब्दों में 'बे दीन' (अधर्मी), 'पैमां-शिकन' (असत्यसन्ध) और 'न मंहम्मद यकीं' (हज़त मुहम्मद से मुनकिर) तक कह ड़ाला। मुग़ल हकूमत की जन विरोधी आसुरी नीतियों का पर्दाफाश करते हुए गुरू जी ने औरंगज़ेव को लिखा था कि तेरी ऐसी बादशाहत पर लानत्त है:-

हैफ़ अस्त, सद हैफ़ ई सरवरी

उस युग में औरंगज़ेबी की इतनी तीखी आलोचना करने का साहस इस कर्म योगी के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति जुटा नहीं सका।

इस क्रांतिकारी दृष्टि तथा युगांतरकारी सृष्टि (खालसा) के साथ अपनी प्रतिबद्धता के लिए गुरु जी को अपना सर्वस्व न्यौछावर करना पड़ा। सचमुच इस महान् कर्मयोगी का इतिवृत्त मानवीय गौरव की एक अत्यन्त प्रेरणा प्रद गाथा के रुप मे सर्वथा वंद्य एवं स्तुत्य है।

अध्याय-२

सत्-साहित्य-स्रष्टा : गुरु गोबिन्द सिंह जी

दशम गुरु जी की दृष्टि, उनकी सृष्टि (खालसा) तथा उनके साहित्य-सृजन में एक सहज परन्तु गहन समन्वय की प्रक्रिया सर्वत्र लक्षित की जा सकती है।

गुरु-घर सम्मत अपनी आध्यात्तिक मान्यताओं की प्रस्तुति गुरु जी ने दो विभिन्न स्तरों पर की है। इन मान्यताओं की सैद्धांतिक विवृति को उनके साहित्य का प्रथम स्तर कहा जा सकता है। इस विवृति के व्यावहारिव कियान्वयन का साक्षात्कार उनके निजी जीवन (विशेषतः जन-मुक्ति-संघर्ष के सन्दर्भ) में किया जा सकता है। यह उनकी दृष्टि का दूसरा स्तर प्रतीत होता है।

वस्तुतः गुरु जी की समन्वियत एंव लोक-मंगल मूलक गति विधियां इन दोनों स्तरों पर सूक्ष्म रूप से एकाकार हो जाती हैं। मन-वचन कर्म के विभिन्न स्तरों पर यह एकरुपता दशम गुरु जी के साहित्य को उदात्त रुप प्रदान करती है।

'सत्'

'सत्य' से विकसित सति, सत , सचु, सच प्रभृति शब्द गुरु-वाणी के मूल आधार प्रतीत होते हैं। 'सतिनामु' से लेकर 'सतिगुरु' और सच्चे-मानव 'पातिसाहु' तक अनेक सन्दर्भो में- इनके अनेक रूपों रूपांतरों में- 'सत्य की व्याप्ति देखी जा सकती है।

चूंकि स्वार्थी तत्वों के इशारों पर मानवीय एकता बार-बार पद दलित की गई है इसलिए मानव की मूलभूत एकता के प्रति पूर्णतः समर्पित होना निश्चय ही एक सत् कर्म है। गुरु-घर का साहित्य इसी मानवीयता का पक्षधर है और इसीलिए इसे सत् साहित्य की कोटि में मूर्धन्य स्थान भी प्राप्त है।

आदि गुरु नानक देव जी ने 'एक ओंकार' के अपने संकल्प के माध्यम से मानव की एक मात्र आराध्य शक्ति तथा मानवता की मूलभूत एकता को रेखांकित किया है। उन्होंने कहाः

ना को हिन्दू, ना को मुसलमान।

इसी परम्परा में पंचम गुरु अर्जुनदेव जी का यह वचन भी माननीय है:-

ना हम हिंदू, ना मुसलमान।

हिन्दू-मुसलमान के भेद भाव दूर करने के लिए गुरु-घर में आराध्य की एकता भी प्रतिष्ठित की गई:

मनि तनि जपि एक भगवंत।
एकु अराधि, पराछत गए। *(सुखमनी)*

मध्यकालीन साहित्य में मानव की मूलभूत एकता के प्रति इतनी गहन प्रतिबद्धता अन्यत्र कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती।

भौगोलिक आधार पर विभिन्न देशों, क्षेत्रों अंचलों में रहने वाले मानव समुदाय ने भिन्न क्षेत्रीय मानव को अनेकशः त्रस्त एंव ध्वस्त किया है। भौगोलिक आधार पर कृत्रिम रूप से विभाजित मानव के अन्तस् में प्रतिष्ठित एकेश्वर की सर्व व्यापकता को दशम गुरु जी ने इस प्रकार शब्द बद्ध किया है:-

फरासी, फिरंगी, फरासीस[1] को दुरंगी,
मकरान[2] को म्रिदंगी तेरे गीत गाईअतु हैं।
भखरी[3], कंधारी, गोर[4], गख्खरी[5], गरदोजाचारी[6],
पउन के अहारी तेरो नाम धिआईअतु है।
पूरब, पछाऊ, कामरूप औ कुमाऊं,
सरब ठउर में बिराजे जहां जहां गाईअतु है।
पूरन प्रतापी, जंत्र मंत्र के अतापी नाथ,
कीरति तिहारी को न पार पाईअतु है।

दशम गुरु जी ने अपने व्यापक अध्ययन, निराली सूझ-बूझ और महनीय दूरदर्शिता के आधार पर अपने समकालीन समाज के असमाजिक धर्म-पूजा-उपासना-विश्वास आदि पर आधारित) भेदभाव को इस प्रकार रेखांकित किया है:-

कोऊ भयो मुंडीआ, संनिआसी, कोऊ जोगी भयो,
कोऊ ब्रह्मचारी, कोऊ जती अनुमानबो।
हिंन्दू, तुरक कोऊ हाफजी[2], इमामसाफी[3]।

1. फ्रांस के रहने वाले : यूरोप वासी 2. ईरान का एक इलाका 3. सिंध का क्षेत्र 4. ग़जनी-हैरात का मध्यवर्ती क्षेत्र (घोर : संस्कृत) 5. जेहलम और हज़ारा ज़िलों के निवासी 6. ग़ज़नी और भारत का सीमांत

मानस की जाति सभै एके पहचानबो।
करता करीम सोई, राज़क[1] रहीम ओई,
दूसरो न भेद कोई, भूलि भ्रम मानबो[2]।
एक ही को सेव, सभ ही को गुरु देव एक
एक ही सरूप सभै, एक जोत जानबो[3]।

पूजा उपासना-पद्धति के नाम पर चलने वाले भेद-भाव को नकारते हुए गुरु जी लिखते हैं:-

देहुरा, मसीत[4] सोई, पूजा औ निवाज ओई,
मानस सबै एक, पै अनेक को भ्रमाउ है।
देवता, अदेव, जछ्छ[5], गंध्रब[6], तुरक, हिंन्दू,
निआरे-निआरे देसन के भेस को प्रभाउ है।
एके नैन एके कान, एके देह, एके बान[7],
खाक[8], बाद[9], आतस[10] औ आब[11] को रलाउ है।
अलहु, अभेख सोई, पुरान औ कुरान ओई,
एक ही सरूप सबै एक ही बनाउ है।

मानव मात्र की एकता के पक्षधर दशम गुरु जी के सत् साहित्य को उनके विरोधियों ने भी बड़ी गंभीरता से लिया तथा उससे भरपूर प्रेरणा प्राप्त की। उदाहरण के लिए, 'ज़फर नामह' को लिया जा सकता है। इस में गुरु जी ने औरंगज़ेब के कुशासन, उसकी धर्मान्धता तथा उसके अत्याचारों का विस्तृत विवरण उसे लिखित रूप में भेजा था। साथ ही गुरु जी इसमें औरंगज़ेब के कुछ गुणों का उल्लेख करना भी नहीं भूले। उन्होंने उसे खूबसूरत, होशियार (चालाक) और तलवार का धनी बताते हुए यह भी लिखा कि तुम धर्म से दूर हो, (दूरस्त दीं)। अपनी इस कटु परन्तु सच्ची आलोचना से औरंगज़ेब को अपनी दुर्नीतियों तथा अपनी अमानवीय गतिविधियों पर पश्चात्ताप हुआ। फल स्वरूप उसने पंजाब के हकिमों के नाम हुक्म जारी किए और गुरु जी के सत्कर्मों के ऊपर लगाए गए सभी प्रतिबंध वापिस लेने को कहा। औरंगज़ेब का यह हृदय परिवर्तन दशम गुरु जी के 'सत् साहित्य' की प्रेरणा का ही परिणाम था।

---

1. 'रिज़क' (रोज़ी) देने वाला। 2. कुर्आन को कण्ठाग्र करने वाला (शीआ) 3. सुन्नी मुसलमान 4. मस्ज़िद 5. यक्ष 6. गंधर्व 7. बनावट 8. मिट्टी 9. पवन 10. अगनि 11. जल

अध्याय-३

श्री दशम ग्रंथ : संरचना तंत्र

सत् साहित्य शिरोमणि इस ग्रंथ का संरचना तंत्र किसी संकलन अथवा संग्रह के अधिक निकट जान पड़ता है। फलतः इसे दशम गुरु जी की ग्रंथावलि या रचनावलि भी कहा जा सकता है। दशम ग्रंथ की विभिन्न पांडुलिपियों तथा मुद्रित संपादित-प्रतियों का पर्यालोचन इसी तथ्य की ओर संकेत करता है।

सामान्यतः श्री दशम ग्रंथ की ये रचनाएं प्रायः सभी लिपि-प्रतिलिपिकारों, मुद्रकों, संस्कर्ताओं तथा सम्पादकों ने अपनी-अपनी प्रतियों में-लगभग इसी क्रम से-संकलित की हैं:-

1) जापु साहिब
2) अकाल उसतुत
3) बचित्र नाटक
4) चंडी चरित्र (उक्ति बिलास)
5) चंडी चरित्र (द्वितीय)
6) वार दुरगा की,
7) गिआन प्रबोध
8) चौबीसास-अवतार, उपावतार (ब्रह्मा और रुद्र)
9) शस्त्र नाम माला
10) चरित्रोपाख्यान[1]
11) जफ़र नामा
12) असफोटक कबित्त (स्फुटः फुटकर छंद)

श्री दशम ग्रंथ की कुछ उपलब्ध प्रतियों में :-

1) जंग नामा (फारसीः गुरुमुखी अक्षरों में)
2) सबद रागां के

1. कुछ विद्वान फारसी की 11 कथाओं -हिकायत - को भी चरित्रोपाख्यान का ही भाग मानते हैं।

3) संसाहर सषामना
4) बिसन पदे
5) माझ

आदि रचनाएं भी संकलित हैं।

श्री दशम ग्रंथ : इतिहास

परम्पराओं के अनुसार दशम गुरु जी ने अपनी देखरेख में श्री दशम ग्रंथ की एक मूल प्रति तैयार करवाई थी। दुर्भाग्य वश आज यह उपलब्ध नहीं है। दशम गुरु जी के स्वर्गवास के पश्चात् भाई मनी सिंह जी ने माता सुंदरी जी (दशम गुरु जी की सुपत्नी) की प्रेरणा से दशम गुरु जी की यत्र तत्र बिखरी पड़ी रचनाओं को 'ग्रंथ' रुप में एकत्रित (संकलित, संपादित) करने का सर्वप्रथम प्रयास किया। अपने अनेक सहयोगियों की सहायता से उन्होंने आज उपलब्ध दशम-ग्रंथ का प्रारुप तैयार किया। इसे 'दसवें पातिसाह का ग्रंथ' यह नाम दिया गया। आगे चल कर अनेक लिपि-प्रतिलिपिकारों ने इस ग्रंथ रत्न की अनेक प्रतियां तैयार कीं। इनमें से ये प्रतियां बहुत मूल्यवान् समझी जाती हैं:

1. आनंद पुरी 'बीड़'[1]

विश्वास किया जाता है कि दशम गुरु जी के 'हजूरी' लिपिकों-लेखकों ने यह प्रति तैयार की थी। प्रारंभिक 63 पत्र इसमें संभवतः बाद में जोड़े गए। इस प्रति के ततकरा:(सूची पत्र) के प्रारंभ में लिखा है, ***'बाणी स्री मुखवाक पातसाही १०'***।

इसका लिपि काल 'संमत 1752 मिती फग्गण (फाल्गुण) 28 दिया गया है।

2. "दो ग्रंथों वाली बीड़"

इसमें आदि ग्रंथ और दशम ग्रंथ दोनों संकलित हैं। दशम ग्रंथ को दसवें पातसाह का ग्रंथ कहा गया है तथा 'ततकरे' (सूचीपत्र) में इसे बचित्र नाटक ग्रंथ भी कहा गया है: ***'ततकरा स्री बचित्र नाटक ग्रंथ का'***।

3. 'मिसल पटना जी की'

पटना के श्रद्धालुओं ने दशम गुरु जी की वाणी संकलित कर एक प्रति तैयार की थी। इस की प्रति लिपि 'अकाल तखत' अमृतसर में सुरक्षित बताई जाती है। इसके प्रारंभ में लिखा है:-

---

1. हस्त लिखित प्रति।

"एक ओंकार स्री भगवती जी सत। संमत अठारां सौ इकी[1] (१८२१ विक्रमी संवत्) मंघ्र (मघर : मार्गशीर्ष) दिने छिअ। १८२१। आइतवार[2] । श्री ग्रंथ जी लिखने लगे। पटने जी दी मिसल। पातसाही १०। स्री मुख वाक[3]
अंत में, 'एक ओंकार स्री भगवती प्रसादि'।

4. मोती बाग : पटियाला की बीड़

इसके प्रारम्भ में उल्लेख है:-

'ततकरा स्री बचित्र नाटक ग्रंथ जी का स्री मुखारबिंन्द वाक पातशाही दसवी'।

नाम करण

दशम ग्रंथ की प्राचीन प्रतियों तथा प्रारंभिक मुद्रित प्रतियों में 'दशम ग्रंथ' के एकाधिक नामांतर मिलते हैं। इनमें सर्वाधिक प्रचलित नाम है, 'बचित्र नाटक'। ऐसा प्रतीत होता है कि 'दशम ग्रंथ' नाम कदाचित् प्रर्याप्त अर्वाचीन है।

दशम गुरु जी की रचनाओं के आदि संकलन कर्ता भाई मनी सिंह जी अपनी प्रति में इसे 'स्री बचित्र नाटक ग्रंथ जी' ही कहते हैं। इसी प्रकार पटने वाली 'बीड़' में भी इसे 'बचित्र नाटक ग्रंथ जी' कहा गया है।

कुछ प्रतियों में इसे 'ग्रंथ जी: पातसाही १०' 'ग्रंथ स्री मुखवाक पातसाही १०' 'ग्रंथ साहिब दसवें पातिसाहि जी का' आदि नामों से भी अभिहित किया गया है। परन्तु गुरु खालसा प्रैस, अमृतसर की मुद्रित प्रति मै इसे 'श्री दसम ग्रंथ साहिब जी' कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि २० वीं शती के प्रारम्भ में ही इस रचना के लिए 'दशम ग्रंथ साहिब' यह सार्थक अमिधान सर्वत्र प्रचलित हुआ ।

रचनावलि : वर्गीकरण

आज उपलब्ध श्री दशम ग्रंथ में संकलित रचनाओं को, सुविधा के लिए, इन तीन वर्गो में विभाजित किया जा सकता है:

1. **वृहत् आकारी रचनाएं:** (बचित्र नाटक, चरीत्रोपाख्यान, शस्त्र नाम माला, गिआन प्रबोध, ११ हिकायतें)
2. लधुआकारी रचनाएं : जापु साहिब, अकाल उसतुत, चंडी चरित्र उकति बिलास, वार दुरगा की, ज़फरनामा

---

1. 1821 विक्रमी संवत् 2. आदित्यवार (ऐतवार) 3. 'वाक' वाक्य : वचन।

3. फुटकर रचनाएं: (सबद रागां के, ३२ सवैये, खालसा महिमा, असफोटक छंद आदि)।

दशम ग्रंथ की इन रचनाओं का अध्ययन विश्लेषण करने से पूर्व श्री दशम ग्रंथ संबंधी प्रमुख शंकाओं आक्षेपों पर विचार कर लेना उचित जान पड़ता है।

श्री दशम ग्रंथ : प्रमुख आक्षेप

दशम ग्रंथ प्रारम्भ से ही अनेक कोटिक विवादों के घेरे में रहा है। इसका कौन सा अंश दशम गुरु जी की तथा कौन सा अंश अन्य कवियों की रचना है, इस विषय पर तीव्र मतभेद रहे हैं। इन मतभेदों के मूल में यह समस्या रही है कि दशम गुरु जी के जीवन काल में-उनकी देखरेख में-संकलित की गई दशम ग्रंथ की कोई प्रति आज उपलब्ध नहीं है। उत्तरवर्ती लिपि-प्रतिलिपिकारों ने कितनी सामग्री अनधिकृत रूप से-दशम गुरु जी के नाम से-श्री दशम ग्रंथ में प्रक्षिप्त रुप से डाल दी? यह प्रश्न भी आज उत्तर सापेक्ष्य है।

श्री दशम ग्रंथ की विषय वस्तु इसमें संकलित रचनाओं तथा उनके क्रम संबंधी प्रश्न भी विगत 100-150 वर्षों से निरंतर चर्चा में रहे हैं।

संभवत: पण्डित तारा सिंह नरोत्तम (जन्म:१८२२ई०) पहले व्यक्ति थे जिन्होंने दशम ग्रंथ संबंधी अनेक प्रश्नों पर विस्तार से चर्चा की। लगता है कि दश्म ग्रंथ संबधी शकाओं आक्षेपों का समाधान करने का सर्वपथम प्रयास पण्डित जी ने किया। उन्होंने श्री दशम ग्रंथ में संकलित सभी रचनाओं को दशम गुरु जी की रचनाओं के रूप में स्वीकार किया।[1]

आगे चल कर 'गुरुमत ग्रंथ प्रचारक सभा, अमृतसर' की देखरेख में एक 'सोधक कमेटी' ने श्री दशम ग्रथ की 32 प्राचीन प्रतियों की परीक्षा की और यह निर्णय दिया कि 'उपलब्ध दशम ग्रंथ में संकलित सभी रचनाएं दशम गुरु जी की ही हैं (सन 1897)।

इसके पश्चात् पंजाब के प्रसिद्ध विद्वानों भाई वीरसिंह, भाई कान्ह सिंह और पण्डित करतार सिंह दाखा आदि ने भी 'सोधक कमेटी' की मान्यता का समर्थन किया और श्री दशम ग्रंथ में सभी रचनाओं को दशम गुरु कृत स्वीकार किया।

1. विस्तार के लिए देखिए, गुरूमति निर्णय सागर : प्रकाशन : 1877 ई.

कुछ उत्तरवर्ती विद्वानों ने श्री दशम ग्रंथ की कई रचनाओं को दशम गुरु जी के कर्त्तत्व के अन्तर्गत रखना उचित नहीं समझा।

वस्तुतः हमारी प्रायः सभी प्राचीन तथा मध्यकालीन महत्वपूर्ण रचनाएं विविध सन्देहों, नाना शंकाओं तथा अनेक कोटिक विवादों घेरे मे हैं। महाभारत का मूल रूप क्या था? उसका मूल आकार-प्रकार कितना और कैसा था? आदि अनेक प्रश्न आज भी अनुत्तरित हैं। यही स्थिति रामायण आदि अन्य कृतियों की भी है। प्राचीन अथवा परम्परा प्राप्त कृतियों का आकार प्रकार यहां तक कि उनका मूल पाठ भी अनपेक्षित एवं अनधिकृत रूप से लिपिक-प्रतिलिपिक परिवर्तित करते रहे हैं। इतना ही नहीं, मूल ग्रंथ में अपने लिखित (रचित) अंशों को भी समाविष्ट करने का लोभ हमारे लिपिक प्रायः संवरण नहीं कर सके। फलतः हमारी प्राचीन (मध्ययुगीन) रचनाओं में प्रक्षिप्त अंशों की भरमार है। इस कारण मूल ग्रंथ के प्रतिपाद्य (पाठ) का अंतिम रूप से निर्धारण करना एक जटिल समस्या का रूप धारण कर लेता है।

राजशेखर आदि आचार्यों ने लिपिक के लिए अनेक गुण तथा लेखकीय (बौद्धिक) योग्यताओं का स्पष्ट निर्धारण किया था[1] । इन आचार्यों ने लेखन के क्षेत्र में लिपिक को नायक के पद पर प्रतिष्ठित किया था। पर दुर्भाग्य से लिपिकों ने 'खलनायक' की भूमिका ही अधिकतर निभाई है।

पंजाब के लिपि कर्म की भी यही सीमाएं रही हैं। 'योग वासिष्ठ-भाषा' के एक लिपिक -केसर सिंह छिब्बर-ने लिखा है:

बहुत लिखारी ने लिखी, पूरन केसर कीन।
भूल चूक सब सोधि के, पढ़िओ चत्र[2] प्रबीन।

पंजाब के लिपिक प्रायः इस 'आप्त-वचन' की ओट भी ले लेते हैं:

भुल्लण अंदर सम कोउ, अभुल्ल गुरु करतार

अथर्ति प्रत्येक व्यक्ति भूल चूक की सीमाओं में है। केवल गुरु करतार (स्वयं ईश्वर) ही 'अभुल्ल' (भूलचूक के ऊपर) है।

भाई कान्ह सिंह ने 'महान् कोश' में श्री दशम ग्रंथ के लिपिकों की अनेक भ्रांतियों को कई स्थानों पर निर्दिष्ट किया है। परन्तु इन भ्रांतियों को पाठालोचन की दृष्टि से अभी तक पूर्णतः सुधारा नहीं जा सका। अतः दशम ग्रंथ का एक नव (वैज्ञानिक) सम्पादन-संशोधनकदाचित् इस क्षेत्र की प्रथम

1. 'शब्द-कल्पद्रुम' तथा 'वाचस्पत्यम्' प्रभृति संस्कृत कोशों में भी लिपिक के गुणों का विवरण उपलब्ध है। 2. चतुर (विशेष विवरण के लिए देखें 'पाठालोचन के सिद्धांत' डा. राजगुरु)।

अपेक्षा है। इसी संदर्भ में मुनि जिन विजय जी का 'संनेह रासउ' (संदेश-शासक) एक अनुकरणीय सम्पादन कहा जा सकता है।

मुलतान ('मूल-स्थान') के 'अद्दहमाण' (अब्दुल रहमान) की लगभग 100 पत्र परिमित इस अपभ्रंश कृति को सम्पादित करने में मुनि जी को 30-35 वर्ष लगे थे। विभिन्न प्रतियों के तुलनात्मक अध्ययन एवं अनेक देशी-विदेशी विद्वानों के साथ विचार चर्चा के बाद इस प्रति का प्रामाणिक पाठ मुनि जी ने तैयार किया था।

महाभारत के प्रामाणिक पाठ के अनुसन्धान कार्य पर भी विगत 70-80 वर्षों से विभिन्न विद्वान् जुटे हुए हैं। महाभारत की 70 के लगभग विभिन्न पांडुलिपियों, उनकी एकाधिक वाचनाओं (Readings), अनेक लिपियों में उपलब्ध महाभारत की प्रतियों, महाभारत के विभिन्न व्याख्या तथा अनुवाद समूह की सहायता से महाभारत का प्रामाणिक पाठ तैयार किया जा रहा है।

इस कार्य को निष्ठा, लगन तथा बौद्धिक साहस का सीमांत निदर्शन कहा जा सकता है। डॉ. सुखथंकर इस कार्य के सूत्रधार रहे हैं। डॉ. कात्रे के अतिरिक्त प्रो. मैकडॉनल्ड, प्रो. विंतर्नित्स प्रभृति विद्वान् भी इस कार्य के साथ-किसी न किसी रूप में-जुड़े रहे हैं।[1]

श्री दशम ग्रंथ जी का सम्पादन भी इसी वैज्ञानिक पद्धति पर किया जाना नितांत अपेक्षित है। यूरोप (जर्मनी और इंग्लैंड) के पुस्तकालयों में संकलित और सुरक्षित श्री दशम ग्रंथ की प्राचीन पांडुलिपियां मेरी नज़रों से गुज़री हैं। इन प्रतियों का विधिवत् तथा सर्वांगीण अध्ययन ही श्री दशम ग्रंथ जी की विभिन्न समस्याओं का समाधान कर सकेगा, यह मेरा विश्वास है।

यहां यह चेतावनी देनी भी आवश्यक है कि दशम ग्रंथ जी के भावी सम्पादकों को प्रत्येक अतिवादी दृष्टि का सर्वथा परित्याग करना होगा। यदि संयोग वश कोई रचना अप्रामाणिक भी सिद्ध हो तो भी परम्परा प्राप्त उस रचना को एकदम हेय समझना भूल होगी। इस संबंध में आवश्यक सूत्र व्यापक विचार विमर्श के बाद निश्चित किए जा सकते हैं।

साथ ही श्री दशम ग्रंथ जी आदि प्राचीन रचनाओं की प्रामाणिकता का प्रश्न भावी अनुसंधाताओं के लिए खुला छोड़ देना चाहिए। अपनी वैयक्तिक

1. (विवरण के लिए देखिए : (i) भण्डारकर ओरियंटल रिसर्च सोसाइटी पूना, की शोध पत्रिका विभिन्न अंक (1929-30 आदि)। (ii) एनल्स आफ भंडारकर ओरियंटल रिसर्च इनस्टीटयूट : भाग 15 आदि।

रूचि तथा नितांत निजी आग्रह निश्चय ही इस समस्या को और अधिक उलझाने वाले तत्व सिद्ध हो सकते हैं।

फलतः निषेध मूलक प्रवृत्ति के मारक़ प्रभाव से बचते हुए श्री दशम ग्रंथ जी के अध्ययन-विश्लेषण का कार्य निरंतर चालू रखना चाहिए। सब कुछ नकार कर हमारी पीढ़ी कदाचित् एक सारस्वत अपराध कर बैठेगी।

श्री दशम ग्रंथ जी की समस्त सामग्री, इसके वर्तमान आकार-प्रकार तथा इसमें संकलित रचनाओं के क्रम को यथावत् सुरक्षित रखते हुए श्री दशम ग्रंथ जी से संबंधित समस्त शंकाओं तथा आक्षेपों को भावी अनुसन्धाताओं के विवेक उनकी सूझ-बूझ तथा अधिक प्रामाणिक सामग्री के उपलब्ध होने की संभावना के भरोसे भविष्य पर छोड़ देना ही श्रेयस्कर होगा।

अध्याय-४

जापु साहिब:
उदात्त मानवीय भावनाओं का घोषणा पत्र

गुरु-घर का समस्त बौद्धिक चिन्तन मूलतः निर्गुण (अद्वैत) वादी दृष्टि का ही फलितार्थ प्रतीत होता है तथा आदि गुरु जी के मौलिक संकल्प 'एक ओंकार' में इस बौद्धिकता तथा आध्यात्मिकता का सर्वातिशायी रूप निहित जान पड़ता है।

निर्गुणवाद की मानवीय अपेक्षाओं को दशम गुरु जी ने अपनी अपूर्व मेधा, अपनी आध्यात्मिक साधना तथा अपने बहुआयामी अनुभवों के आधार पर अधिक व्यापक एंव विशद रूप दिया है, जापु साहिब में।

जापु श्री दशम ग्रंथ की मूर्धन्य रचना है। आदि गुरु जी की 'जपु' (नीसाणु) को आदि ग्रंथ में जिस महिमा से मण्डित किया गया है, उसी कोटि का सम्मान श्री दशम ग्रंथ में 'जापु' को भी परम्पराओं से मिलता आ रहा है।

श्री दशम ग्रंथ की उपलब्ध सभी पाण्डुलिपियों, मुद्रित-संपादित संस्करणों में सर्वत्र जापु को प्रथम स्थान मिला है। गुरु-घर की विचारधारा की सर्वाधिक प्रामाणिक उत्तर कालीन प्रस्तुति के रुप में भी जापु साहिब का मूल्य और महाव अक्षुण्ण है।

वस्तुतः मध्यकालीन निर्गुणवादी साहित्य के इतिहास में जापु साहिब निर्गुण परक सभी मानवीय विन्दुओं को एक व्यावहारिक समन्विति प्रदान करता है। फलतः यह कहना समीचीन होगा कि जापु साहिब पंजाब के निर्गुण साहित्य की परिधि में तो एक शिरोमणि कृति के रूप में प्रतिष्ठित है ही, साथ ही यह भी सच है कि उत्तरी भारत के समस्त निर्गुणपरक साहित्य में इतनी तेजस्वी, ओजस्वी एवं बहु आयामी कोई अन्य कृति कदाचित् नहीं है। अद्वैत मूलक, समन्वय प्रधान एंव लोक कल्याण परक इस रचना का मूल्यांकन पर्याप्त विस्तार सापेक्ष्य विषय है। संक्षेप में, इस कृति के प्रमुख विचार विंदुओं का मात्र सांकेतिक परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है:-

निर्गुणवाद

त्रिगुणात्मक जगत् की समस्त व्याप्तियों, अनुभूतियों तथा विडम्बनाओं से एकान्ततः निर्लिप्त (निर्गुण) रूप में 'ब्रह्म' को आध्यात्मिकता के उच्चतम धरातल पर प्रतिष्ठित कर भारतीय मेधा ने एक अनुपम एवं नितान्त बौद्धिक प्रत्यय की प्रस्तुति की है। सार्वभौम ज्ञानकाण्ड के क्षेत्र में भारत की यह उपलब्धि सर्वथा मौलिक तथा अत्यंत उपादेय मानी जाती है।

वैदिक युग के अनेक हिंसक-अहिंसक कर्मकाण्डों से जूझती भारतीय मनीषा ने अन्ततः सभी स्थूल आचार-विचार-निकर, पूजा-प्रकार-उपचार वर्ग को सर्वथा नकारते हुए एक अद्वैत परमसत्ता के सर्व व्यापक अस्तित्व को रेखांकित किया। इस परम सत्ता को सामान्यतः (पर) ब्रह्म नाम से अभिहित किया गया।

भारतीय मनीषियों ने कण-कण में व्याप्त इस परमसत्ता की अनुभूति तथा इसके साथ 'तद्-आकार-आकार' होना मानव जीवन का चरम लक्ष्य निर्धारित किया।

इस लक्ष्य की प्राप्ति में सबसे बड़ी (एकमात्र) बाधा त्रिगुणात्मक सृष्टि की मानी गई। यह सृष्टि-प्रपंच अपनी विविध प्रवंचनाओं तथा अपने राग-विराग की नाना रूपा जटिलताओं के जाल में मानव को उलझा लेता है और अंततः मानव को पथ-भ्रष्ट कर देता है।

श्री कृष्ण ने इस त्रिगुणात्मक प्रपंच की व्याप्ति को इस प्रकार निर्दिष्ट किया है:-

'त्रैगुण्य विषयाः वेदाः,
निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन'।

अर्थात् वेद (मानव का समस्त अर्जित ज्ञान) भी त्रिगुणात्मक सृष्टि की परिधि-में ही है। त्रिगुण की इस जकड़न से मुक्त होने में ही कल्याण है।

कबीर ने इसी तथ्य की विवृति 'माया', 'तिरगुन' (त्रिगुण) और 'फांस' (पाश) के प्रतीकों के माध्यम से की है:-

माया महा ठगिनी हम जानी,
तिरगुन फांस लिए कर डोले,
बोले मधुरी बानी।

स्पष्ट है कि त्रिगुणत्मक जगत् प्रपंच का प्रत्याख्यान तथा त्रिगुणात्मक परब्रह्म का अनुभावन निर्गुणवादी दृष्टि का केन्द्र बिंदु रहा है।

वैदिक कर्मकाण्ड की स्थूल भावनाओं से उबर पाना उत्तरवार्ती भारतीय समाज के लिए प्रर्याप्त कठिन काम था। ऐसा जान पड़ता है कि ज्यों-ज्यों औपनिषदिक सूक्ष्म चिन्तन प्रखर तथा प्रबल होता गया त्यों-त्यों यज्ञ-याग संबंधी वैदिक भावनाएं विलीन होती गईं।

(1) *'अहं-ब्रह्म-अस्मि'* (मैं ब्रह्म ही हूं)
(2) *'तत्-त्वम्-असि'* (तू ब्रह्म ही है)

जैसे ब्रह्म-परक श्रौत वचनों को आधार बना कर ब्रह्मवादियों (वादिनियों) ने एक नव-चिंतन का सूत्रपात किया। इस चिन्तन की चरम परिणति हुई शंकराचार्य के अद्वैतवाद में।

शंकराचार्य से पूर्व तथागत बुद्ध तथा जैन तीर्थंकरों ने भी वैदिक कर्मकाण्ड का प्रत्याख्यान करते हुए प्रकारांतर से निर्गुणवाद की मूल भावनाओं का ही प्रस्तवन किया था।

शंकराचार्य ने ब्रह्म के समस्त चिन्तन को आत्मसात् कर तथा ब्रह्म (एवं माया) के संकल्प को केन्द्र में रख कर जो दर्शन प्रस्तुत किया, उसे औपनिषदिक निर्गुणवाद की प्रथम औपचारिक प्रस्तुति कहा जा सकता है।

शंकराचार्य के चिंतन का बुद्ध की दृष्टि के साथ इतना धनिष्ठ साभ्य है कि भारतीय परम्पराएं शंकर को 'प्रच्छन्न बौद्ध' के रूप में याद करती आ रही हैं।

कालांतर में शंकर के अद्वैतवादी अनुयायी अधिकाधिक समाज निरपेक्ष होते चले गए। अब प्रव्रज्या और सन्यास को ही-भ्रांति वश-मानव का एक मात्र लक्ष्य मान लिया गया। साथ ही शंकर के मायावादी चेले हश्यमान जगत् को सर्वथा मिथ्या (ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या), मात्र स्वप्न तथा नितांत उपेक्षणीय मानने पर अतिरिक्त बल देने लगं पड़े। फलस्वरूप भारतीय समाज-कुछ महनीय अपवादों को छोड़ कर -अकर्मण्यता के अंधकूप में डूबता चला गया। दुर्भाग्य से भारत के लोग सामान्यतः राष्ट्र, समाज-यहां तक कि-अपने परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों को भी तिलांजलि दे बैठे। इस प्रकार हुआ भारत की सर्वतोमुखी अधोगति का सूत्रपात।

निर्गुण (अद्धैत) वाद की इस 'लोक संग्रह' विरोधी दृष्टि का तत् कालीन विद्वानों ने प्रबल विरोध किया। वेदांत सूत्रों के बहु संख्यक व्याख्याताओं-आचार्यों ने शांकर वेदान्त का जबर्दस्त खण्डन किया।

वस्तुतः शंकर तथा उनके अनुयायियों ने अपने 'ब्रह्म' की सत्ता को प्रतिष्ठित करने तथा उसके अनुभावन के लिए जिस जटिल पद्धति की संस्तुति

की, उस पद्धति- विचार सरणि का अनुमोदन भारत के बहु संख्यक दार्शनिकों अध्यात्मवादियों तथा अन्य विचारकों (सुधारकों) ने नहीं किया। इसके अतिरिक्त निर्गुण-निराकार ब्रह्म अपने लिए पर्याप्त साधक भी नहीं जुटा पाया। अंततः 'ब्रह्म के चारों ओर-लोगों को लुभाने के लिए-भ्रम का वही जाल बुन लिया गया जिसके लिए सगुणवादी साधक कुख्यात रहे हैं। इस प्रकार ब्रह्म का समूचा संकल्प एक मुखौटा बन कर ही रह गया।

शंकराचार्य से पूर्व तथागत बुद्ध को 'धम्म' को भी इसी कोटि की अग्नि परीक्षा देनी पड़ी थी। उधर बुद्ध का विश्वास न आत्मा पर था और न ही परमात्मा पर। परन्तु श्रावक (भक्त) जुटाने के लिए-व्यापक जन समर्थन पाने के लिए-बुद्ध के शिष्यों ने न केवल बुद्ध को ईश्वर के पद पर ही प्रतिष्ठित किया,वरन बुद्ध के अनेक अवतारों (बोधिसत्वों) की भी कल्पना कर डाली। अद्वैत परक निर्गुण वादी विचारधारा का यह अवमूल्यन-दर्शन तथा साहित्य में कहीं भी लक्षित किया जा सकता है।

निर्गुणवाद : लोक संग्रह

निर्गुणवादी दृष्टि सामान्यतः लोक-परक नहीं थी। इस एकांगिता को दूर करने के लिए मध्ययुग के अनेक जागरूक विचारकों ने निर्गुण वाद तथा लोक-संग्रह का एक अद्भुत समन्वय प्रस्तुत किया।

महाराष्ट्र[1] में नामदेव, ज्ञानेश्वर, तुकाराम और रामदास आदि अनेक विचारकों ने निर्गुणवाद, जन-कल्याण और जन जागरण का समन्वित रुप अपनी रचनाओं में प्रस्तुत किया।

कबीर के नेत्तृत्व में पूर्वी क्षेत्रों के विचारक भी राष्ट्र के नव-निर्माण में जुट गए। पंजाब में आदि गुरु नानक देव जी ने निर्गुणवाद को जन कल्याण के साथ संबंद्ध किया। उनके उत्तराधिकारी गुरु व्यक्तियों ने आदि गुरु जी के इस कार्यक्रम को अधिकाधिक प्रभावी ढंग से चलाया।

सकारात्मक पक्ष

दशम गुरु जी ने निर्गुणवाद के गुरु-घर-सम्मत जिस सकारात्मक (उपादेय) पक्ष पर अधिक बल दिया, उसमें (१) एकेश्वर-वाद (२) ईश्वर की सर्व व्यापकता तथा (३) सकल-मानव-समभाव आदि तत्व अधिक महनीय स्वीकृत हुए।

---

1. पंचमगुरू श्री गुरू अर्जुन देव जी ने इन निर्गुणवादी संतों का स्मरण किया है :- 'नामदेव, त्रिलोचन, कबीर दास हो'। (आदि ग्रंथ)

नकारात्मक पक्ष

इसी प्रकार निर्गुणवाद का निषेध मूलक पक्ष भी दशम गुरु जी ने गुरु-घर की मर्यादाओं के अनुरूप स्थान-स्थान पर रेखांकित किया है। इस पक्ष की प्रमुख निषेधाज्ञाएं ये हैं:-

(1) मूर्तिपूजा की अस्वीकृति, (2) पाखण्ड-आडंबर विरोध, (3) तर्कशून्य तीर्थ स्नान आदि स्थूल क्रिया कलापों का प्रतिषेध, (4) जाति-पांति-निषेध आदि।

वस्तुतः मानव के सर्वांगीण विकास तथा मानव जाति को एकता का वज्र कवच प्रदान करने का इतना व्यापक एवं गम्भीर उपक्रम किसी भी भाषा अथवा समाज के लिए अत्यंत गौरव का विषय है। इस दृष्टि से दशम गुरु जी की मूर्धन्य कृति जापु साहिब का एक अंतरंग परिचय यहां संक्षेपतः प्रस्तुत किया जा रहा है।

जापु साहिब : *(नामांतर : अकाल सहंसर : सहस्र : नाम)*

दशम ग्रंथ की इस सिरमौर वाणी में इन 10 (छन्द) जातियों के 198 पद्य उपलब्ध हैं:

(1) छपै (छप्पय), (2) हरि बोल मना, (3) चरपट, (4) चाचरी, (5) एक अछरी, (6) भगवती, (7) भुजंग प्रयात, (8) मधुभार, (9) रूआल, (10) रसावल।

दशम गुरु जी ने पारंपरिक छन्दों के साथ-साथ कुछ नवीन छन्दों की भी उद्भावना की है। भारतीय छन्द शास्त्र की परम्परा में उनका यह अवदान अत्यंत महत्वपूर्ण है।

जापु साहिब : *(एकेश्वर वाद)*

दशम गुरु जी गुरु-घर की केंद्रीय विचार धारा (निर्गुणः अद्वैतःवाद) के सकारात्मक पक्ष-एकेश्वर वाद-की प्रस्तुति निमित्त अपनी इस रचना का प्रारम्भ इस प्रकार करते हैं:-

'श्री मुख वाक। पातिसाही १०'।
छपै छंद। त्व प्रसादि।

चक्र चिहन अरु बरन जाति अरु पाति नहिन जिह,
रूप रंग अरु रेख भेख कोऊ कहि न सकत किह।
अचल मूरति, अनभउ प्रकास, अमितोज कहिज्जै,
कोटि इंद्र इंद्राण, साहु साहाण गणिज्जै।

त्रिभवण महीप, सुर, नर, असुर, नेति नेति बन त्रिण कहत।
त्व सरब नाम कथै कवन, करम नाम बरणत सुमति।

इस प्रारम्भिक पद्य में दशम गुरु जी ने अपनी निर्गुणवादी दृष्टि के प्रमुख उपकरणों को समेट लिया है। 'अकाल पुरूष' (पर ब्रह्म) प्रत्येक संभावित स्थूल चिन्ह (प्रतीक, मूर्ति) आदि की परिधि में नहीं आता। जाति पांति की सीमाओं में भी उसे बांधा नहीं जा सकता। कोटि-कोटि इंद्रों का वह सरताज़ है और है शहन-शाहों का शहन-शाह, समस्त चर-अचर जगत 'नेति-नेति' पद से उसकी असीम सत्ता को रेखांकित करता है। अंतिम पंक्ति में कहा गया है कि 'तुम्हारी समस्त नामावलि (सरब नाम) कौन गिन-कह-सकता है। विद्वान् लोग तुम्हारे क्रिया-कलाप को देख कर तुम्हारे 'कर्म-नामों'[1] का ही वर्णन किया करते हैं।

ब्रह्म (अकाल पुरूष) के मन-वाणी अगोचर रुप की ऐसी सशक्त अभिव्यक्ति समूचे निर्गुणवादी साहित्य में अत्यंत दुर्लभ है। साथ ही, एकेश्वर वादी दृष्टि का विशाल रुप भी इन पंक्तियों में साकार हो उठा है। गुरु जी नमस्कार भी उसी 'एक रुप' को करते हैं:

'नमसतं सु एकै' *(पद्यः९)*

उसकी एकता और अनेकत्ता का यह विवरण जिनता सार्थक है, उतना ही रमयीय भी:-

एक मूरति, अनेक दरसन, कीन रूप अनेक,
खेल खेलि, अखेल खेलन, अंति को फिरि एक।

काव्य की अतिशय रमणीयता के साथ 'उस' की एकता-अनेकता को इन पंक्तियों में रेखांकित किया गया है।

काव्य की रमणीयता को अक्षुण्ण रखने हुए दशम गुरु जी की अद्वैत दृष्टि श्री दशम ग्रंथ के अनेक अन्य अवतरणों में भी प्रतिफलित हुई है।

अकाल पुरूष : सर्व व्यापकता

'उस' के एकत्व (अद्वैत) भाव को हृदयंगम करने के लिए 'उस' की सर्व व्यापकता को लक्षित करना ही होगा। अतः गुरु-घर में 'उस' की सर्व व्यापकता को प्रायः कहीं भी आंखों से ओझल नहीं होने दिया गया। ''जापु

---

1. Functional Denomination (विष्णु सहस्र नाम प्रभृति पौराणिक कृतियों में सहस्र नाम (सरब-नाम) गिनाने की परम्परा पाई जाती है। दशम गुरु जी ने इस परम्परा में 'कर्म-नाम' संकलित करने का नव-उपक्रम किया है। 'कर्म नामों' में अकाल पुरूष के लोक मंगल परक कर्मों का विवरण दिया गया है। 'लोक-संग्रह' की हष्टि से यह नामावलि अत्यंत महत्वपूर्ण है।)

साहिब' के ये कतिपय अवतरण इस तथ्य की पुष्टि करते हैं:-

(1) ***तेरा जोरु। चाचरी छंद।***

जले हैं, थले हैं *(पद्य ६२)*

(2) जल-थल व्यापी इस अद्वैत सत्ता को ***'भुजंग प्रयात'*** छंद के आवरण में इस प्रकार निर्दिष्ट किया गया है:-

नमो सरब देसे नमो सरब भेसे *(पद्य:६६)*

कि सरबत्र देसे *(पद्य:११४)*

(3) इसी भावना को 'रूआल छंद' के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है :-

जत्र तत्र बिराजहि, अविधूत, रूप रसाल। *(पद्य:७०)*

इसी लिए वह 'सरब आतम' है।

(4) त्रिभुवन (चराचर) जगत् के 'उस' नियन्ता के ये 'कर्मनाम' द्रष्टव्य हैं:

नमो सरब गउने, नमो सरब भउने।[2]

(5) इसी भावना को अरबी भाषा के मध्य प्रत्यय 'उल' के साथ दशम गुरु जी इस प्रकार रेखांकित करते हैं, 'समसतुल निवासी', 'समसतुल सरूप', 'प्रिथी उल प्रवास'।

सकल-सम-भाव

अकाल पुरूष के कुछ 'कर्म-नाम' जापु साहिब में इस प्रकार निर्दिष्ट किए गए हैं:-

(1) ***'हरि बोल मना'*** छन्द में 'उस' को ***'करुणालय'*** (पद्य:१७०), बताया गया है।

उसकी करूणा मानव-मात्र के लिए है, उस लिए उसे 'बिस्वंभर' के साथ-साथ ***'सरब पाइक'*** (रक्षक) भी बताया गया है *(पद्य १८०)*।

चुंकि उस की 'गति मिति उदार' (पद्य:१६३) है अतः उसे ***'सरब उबारन'*** (पद्य:१७१) के विरूद् से स्मरण करना भी समुचित ही है।

---

1. गमनशील। 'सरब गता', 'सरबुल गवन' भी इसी अर्थ के बोधक हैं। 2. भवन। सबको शरण देने वाला (महान कोश)

2. (भवनशील सबको शरण देने वाला (महान कोश) (पद्य २२)

अपने इस मानवीय क्रिया-कलाप के कारण उसे ***'समसतुल-अजीज'*** (सर्व प्रियः पद्य १५५) भी कहा जा सकता है।

निश्चय ही अकाल पुरूष के लिए प्रयुक्त ये सब विशेषण सगुणवादी विचारधारा के ही अनुरूप हैं। परंतु दशम गुरु जी इन्हें विशेषण के रुप नहीं 'कर्म-नाम' (Functional denomination) के रूप में प्रयुक्त करतें है ***'सगल संग हम कउ बणि आई'*** जैसी अपनी भावना के अनुरूप इन 'कर्मनामों' का प्रयोग गुरु जी ने किया है।

नकारात्मक पक्ष

निर्गुण वाद की निषेध-परक आज्ञाओं को तथा गुरु-घर की मर्यादाओं के अनुरूप साधना के लिए अविहित तत्वों को नकारात्मक वचनों के माध्यम से दशम गुरु जी ने सर्वत्र निषिद्ध ठहराया है। इस नकारात्मक पक्ष से संबंधित कुछ वर्जनाएं ये हैं:-

1. मूर्ति पूजा

मूर्ति पूजा का प्रत्येक संभावित-कल्पित-रूप में सर्वथा निषेध जापु साहिब में अनेकशः किया गया है। 'उस' के किसी भी प्रतीक, (चिन्ह) मूर्ति आदि को जापु साहिब के प्रथम पद्य में ही नकार दिया गया है। अन्यत्र भी इसी दृष्टि को ही रूपायित किया गया है:-

नमसतं अकाए *(पद्यः३)*

'काय' रहित 'उस' की मूर्ति की कल्पना भी कैसे की जा सकती है? फलतः मूर्ति पूजा मिथ्या विश्वास मूलक एक तर्कशून्य परम्परा से अधिक कुछ नहीं है, यह है गुरु-घर की दृष्टि का फलितार्थ।

चित्रं विहीने। *(पद्य १०७)*

'उस' अशरीरी सत्ता का चित्र भी बनाना असंभव है। इसी लिए 'उसे' किसी चित्र में भी चित्रित नहीं किया जा सकता। 'नचित्रे' (पद्य १०७) कहकर भी इसी भाव की पुष्टि की गई है।

'उस' की सर्व व्यापकता के आधार पर 'उस' की किसी मूर्ति का निर्माण अथवा उसकी स्थापना का निषेध बार-बार किया गया है:-

सरबत्र देसे, सरबत्र भेसे। *(पद्यः११७)*

कह कर दशम गुरु जी ने 'उस' की सर्व व्यापकता को खण्डित करने वालो (देश-काल की सीमाओं में सीमित-कीलित मूर्ति) को सर्वथा नकार दिया

है। 'उस' (पूरन पुरष) की पुनीत मूर्ति को 'अनादि मूर्ति' (अनादि सत्ता) बताते हुए 'उसे' सदा सर्वत्र स्थापित बताया गया हैः-

आदि देव, अनादि मूरति, थापिउ सभै जिह थाप।
परम रुप, मूरति पुनीत, पूरन पुरष अपार। *(रुआल छंदः८३)*

इस 'पुनीत मूरति' के समक्ष किसी अन्य (निम्न कोटिक) मूर्ति की क्या बिसात? 'उस' के सर्वत्र स्वतः स्थापित रूप की साक्षी हैं, जापु साहिब की ये काव्य पंक्तियां:

नमो सरब थापे *(पद्यः२०)*

तथा

सरबत्र लीने *(पद्यः११३)*

जाति-पाति निषेध

जात-पात, छुआ-छूत और ऊँच-नीच जैसे जन्म से संबंधित सामाजिक अभिशाप हमारी राष्ट्रीयता को खण्ड-खण्ड करने वाले तत्व रहे हैं। यही कारण है कि प्रत्येक युग में इन तत्वों के दुष्प्रभाव को प्रत्येक जागरूक चिंतक, विचारक या सुधारक ने न केवल रेखांकित ही किया वरन इनका प्रबल विरोध भी किया। पंजाब में गुरु नानक देव जी ने इस सामाजिक अभिशाप के विरुद्ध अपनी आवाज़ बुलंद की थीः-

जाणहु जोति, न पूछहु जाती, आगे जाती न हो। *(आसा/म. ९)*

अर्थात् किसी व्यक्ति से उसकी जात-पात पूछने का कोई मतलब नहीं है। पूछना है तो उसके ज्ञान (सद्गुणों) के बारे में ही पूछ-ताछ करनी चाहिए। 'परलोक' में भी जाति पाति का कोई मूल्य महत्व नहीं है।

अपनी इस सामयिक दृष्टि के माध्यम से गुरु जी ने जन्म के आधार पर व्यक्ति की जाति का निर्धारण करने वालों को इस प्रकार फटकारा थाः-

जाति जनमु नह पूछीऐ, सचुघरु लेहु बताइ।
सा जाति, सा पाति है, जेहे करम कमाइ।

भाव यह कि जाति जन्म से नहीं, बल्कि कर्म से निर्धारित की जानी चाहिए।

गुरु जी के इन वचनों तथा जाति भेद को सर्वथा नकारती हुई उनकी दृष्टि एवं उनकी जीवनचर्या के अनुरूप उत्तरवर्ती गुरु व्यक्तियों ने मन-कर्म-वचन के स्तरों पर जाति-पाति की असामाजिक कुप्रथा के विरुद्ध निरंतर संघर्ष किया।

दशम गुरु जी के ये वचन, इस सन्दर्भ में, अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं:-

नमसतं अजाते, नमसतं अपाते।
नमसतं अमजबे, नमसतरसतु अजबे।

(जापु साहिब पद्य:१७)

'अकाल पुरूष' को नमस्कार करते हुए गुरु जी उसकी जात-पात और मज़हब की सीमातीत 'अजब' स्थिति को यहां रेखांकित करते हैं। इससे पूर्व भी वे 'चिन्ह' तथा 'वर्ण' के साथ-साथ जाति-पाति से सर्वथा असंयुक्त 'उस' की स्थिति का उल्लेख कर चुके हैं [1]।

वे आगे लिखते हैं:-

देव भेव[2] ने जानही, जिह बेद अउर कतेब।[3]
रूप रंग, न जात पात।

(पद्य:८२)

'नाम ठाम, न जात जाकर' कहकर वे अपने आराध्य के विलक्षण अस्तित्व को निर्दिष्ट करते हैं। उनका तर्क है कि यदि जात-पात से 'उस' का कोई संबंध नहीं है, तो 'उस' की सृष्टि में जाति-धर्म और मज़हब के आधार पर इतने व्यापक और अमानवीय भेदभाव का औचित्य क्या है?

वस्तुतः जापु साहिब गुरु जी के नितान्त अंतरंग (उनके आत्म चिंतन-मंथन-मनन) के क्षणों की वाणी है, इस लिए इसमें निर्गुणवाद के गुरु-घर सम्मत सकारात्मक पक्ष की ही अधिक विवृति संभव हुई है।

निर्गुणवाद की निषेधात्मक आज्ञाओं का सविस्तार विवरण गुरु जी की अन्य रचनाओं में सर्वत्र उपलब्ध है।

दशम गुरु जी ने जापु साहिब के अध्यात्मिक वैभव को जिस साहित्यिक कौशल, छन्द विधान की अपूर्व प्रस्तुति, अपने लौकोत्तर सौंदर्य बोध एंव अपनी अद्‌भुत भाषाई सूझ-बूझ के साथ प्रस्तुत किया है, उसे एक साहित्यिक चमत्कार ही कहा जा सकता है।

वस्तुतः जापु साहिब उन समस्त मानवीय मूल्यों के प्रति पूर्णतः प्रतिबद्ध रचना है, जिन मूल्यों की स्थापना का स्वप्न मानव देखता आया है।

---

1. जापु साहिब पद्य : १ 2. भेद 3. किताब। 'कुर्आन'।

अध्याय-५

'अकाल उसतत'[1]: निर्गुणवाद का विश्वकोश

मानव व्यक्तिगत स्तर पर अपने को दूसरों से सर्वथा पृथक् तथा किसी न किसी रुप में शेष मानव समुदाय से उच्च (विशिष्ट) होने का भ्रम पालता आ रहा है। मानव प्रायः अपने वैशिष्टय का दावा कभी धर्म-मज़हब, कभी अपनी भौगोलिक स्थिति, कभी अपने इतिहास, अपनी संस्कृति, अपनी भाषा-बोली की तो फिर कभी सिर्फ अपनी सफेद चमड़ी की जर्जर बैसाखियों के सहारे ही पेश करता आ रहा है।

इस कृत्रिम तथा अमानवीय वैशिष्टय का निषेध दशम गुरु जी ने सर्वत्र किया है। अपनी इस कृति में भी उन्होंने इस भ्रम जाल से मानव को मुक्ति दिलाने का - जापु साहिब के बाद - एक और उपक्रम किया है।

निर्गुणवाद की गुरु-घर सम्मत दृष्टि के अनुरूप गुरू जी जाने अपनी इस रचना में भी निर्गुणवाद की सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों ही दृष्टियों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। इस प्रकार 'अकाल उसतत' जापु साहिब के समस्त आध्यात्मिक संकल्पों तथा दार्शनिक-सामाजिक प्रत्ययों के विशद भाष्य का रूप धारण कर लेती है।

नामकरण

डॉ. रत्नसिंह जग्गी[2] के अनुसार, 'इस रचना के आरंभिक पद 'अकाल' । और इसके अंतिम पद 'उसतति संपूरन में आए' 'अकाल' और उसतति शब्दों के समाहार से "अकाल उसतति" नाम प्रचलित हुआ।"

संरचना तंत्र

गुरु जी की इस रचना के प्रथम लिपिक ने, संभवतः इस रचना के प्रारम्भ में गुरु जी से आशीर्वाद (मंगल) बचन लिचने की प्रार्थना की। इस पर गुरु जी ने ये प्रारम्भिक पंक्तियां अपनी लेखनी से स्वयं लिखीं :-

---

1. स्तुति से विकसित उसतुति, उसतत आदि शब्द पंजाबी में प्रचलित हैं। कहीं कहीं 'असतुत' भी मिलता है। 2. 'पंजाबी साहित्त कोश'

अकाल पुरुख की रच्छा हमनै, सरब लोह[1] की रछिछआ हमनै।
सरब काल जी दी रछिछआ हमनै, सरब लोह जी दी रछिछआ हमनै।

लिपिक ने इन पंक्तियों को 'उतार खासे दसखत' (दशम गुरु जी की अपनी हस्तलिपि) कह कर स्वीकार किया। लिपिक ने अपनी हस्तलिपि को 'लिखारी के दसखत' बताया है।

'अकाल उसतत' का यह आंतरिक साक्ष्य इस रचना को दशम गुरु जी की कृति सिद्ध कर देता है। यही कारण है कि इस रचना को श्री दशम ग्रंथ में-वरीयता क्रम से- (जापु साहिब के पश्चात्) प्रायः दूसरे स्थान पर रखा गया है।

खेद है कि इस रचना में लिपि-प्रतिलिपिकारों ने भ्रांतिवश 'पाठ' संबंधी कई विपर्यय किए हैं। पाठ-संबंधी इस स्थिति को श्री दशम ग्रंथ के प्रत्येक अध्येता ने लक्षित किया है।

'अकाल उसतत' में 271 1/2 छन्द उपलब्ध हैं। अंतिम छन्द (पाधड़ी) के केवल दो ही चरण इसमें संकलित हैं। शेष दो चरण 'अप्राप्त' बताए जाते हैं। इस रचना में ये छंन्द प्रयुक्त हुए हैंः- (1) सवैया, (2) कवित्त, (3) चउपई, (4) तोटक, (5) दीरघ त्रिभंगी, (6) दोहरा, (7) निराज[2], (8) पाधड़ी, (9) भुजंग प्रयात, (10) रूआल, (11) लघु रूआल।

जापु साहिब की भाष्य रूपा 'अकाल उसतत' के गुरु-घर सम्मत प्रतिपाद्य, इसकी अर्थ-विछित्तियों तथा इसके अभिव्यंजना-शिल्प का संक्षिप्त सा परिचय इस प्रकार दिया जा सकता हैः-

'अकाल उसतत' का प्रारम्भ इस चउपई के साथ होता हैः-

प्रणवो आदि एकंकारा।[3]
जल,थल महीअल[4] कीओ पसारा।
आदि पुरष अबगत,[5] अबिनासी।
लोक चत्रदस[6] जोति प्रकासी'।

गुरु-घर-सम्मत 'अकाल पुरष' का यह शब्द-चित्र जितना यथार्थ है, इसका सानुप्रासिक (काव्य) सौंदर्य भी उतना ही आश्चर्यजनक है। अगली

---

1. अकाल पुरूष का गुण वाचक नाम। वज्र शरीर। यह नाम कदाचित् अप्रचलित ही रहा। विस्तार के लिए देखिए : महान कोश। 2. पारंपरिक 'नाराच' छंद का परिवर्तित रूप। 3. '१ओंकार' का संक्षिप्त रुप। 'अकाल पुरष' (परम सत्ता) के अद्वैत रुप को व्यंजित करता है, यह शब्द। 4. महीतल : पृथ्वी 5. अविगत 6. चतुर्दश। चौदह

पंक्तियों में उसे 'अद्वै', 'अकाल पुरष' 'अंतरजामी' तथा 'अबिकार' आदि पदों से निर्दिष्ट करते हुए कहा गया है कि वह 'काल' (मृत्यु:समय) के जाल से सर्वथा विमुक्त 'अन काल' (अकाल) रूप है:-

काल रहत अनकाल सरुपा।

'उस' के 'विश्व रूप' की यह प्रस्तुति जहां दार्शनिक दृष्टि से नितांत प्रामाणिक है, वहां इसके बिंब विधान की अनूठी सृष्टि भी बहुत धार्मिक है:-

जैसे एक आग ते कनूका[1] कोट[2] आग उठे,
निआरे-निआरे हुइ के फेरि आग मैं मिलाहिंगे।
जैसे एक धूर[3] ते अनेक धूर पूरत हैं,
धूर के कनूका फेरि धूर ही समाहिंगे।
जैसे एक नद[4] ते तरंग कोट उपजत,
पान[5] के तरंग सबै पान ही करहाहिंगे।
तैसे विस्व रूप ते अभूत[6] भूत[7] प्रगट होइ,
तांहि ते उपज सबै ताहि मै समाहिंगे।

निर्गुणवादी दृष्टि का यह विश्वकोशीय प्रस्तावन पाठक को चमत्कृत कर देता है। इसी संदर्भ में ब्रह्म की सर्वव्यापकता की यह काव्यमयी भंगिमा द्रष्टव्य है:-

'जले हरी। थले हरी।
उरे[9] हरी। बने हरी।
गिरे हरी। गुफे[10] हरी।
छिते[11] हरी। नभे हरी।
तुहीं, तुहीं, तुहीं, तुहीं।.......

इस अकाल पुरष की महिमा का साक्षात्कार गुरु जी ने साधकों को इस प्रकार करवाया है:

कहूं हुइ कै हिंदूआ,गाइत्री को गुपत जपिओ,
कहूं हुइ कै तुरका पुकारे बांग देत हो।
कहूं कोक काव हुइ कै पुरान को पढ़त मत,
कतहूं कुरान को निदान जान लेत हो।

---

1. कण, चिंगारी 2. कोटि, करोड़ 3. धूल 4. नदी 5. पानी 6. अविद्यमान 7. प्राणी 8. नाराच छन्द का परिवर्तित रूप 9. उर में 10. गुफा में 11. क्षितिः भूमि

कतहूं बेद रीत, कहूं ता सिउ बिपरीत,
कहूं त्रिगुन अतीत कहूं सरगुन समेत हो।

इस साक्षात्कार का उद्देश्य धर्म-मज़हब, गायत्री-नमाज़, पुराण-कुरान और निर्गुण-सगुण के अंतराल को पाट कर एक अद्वैत सत्ता की अनुभूति कराना है। इसी लिए गुरु जी कहते हैं :-

बेद पुरान, कतेब कुरान, अभेद त्रिपान सभै पचि हारे
राग न रूप, न रेख, न रंग, न साक, न सोग न संगि तिहारे।
आदि अनादि अगाध, अभेख, अद्वैष, जपिओ तिन ही कुल तारे।

गुरु जी की यह भावना निर्गुणवादी दृष्टि को पूरी कलात्मकता के साथ रुपायित करती है।

चूंकि गुरु जी पात्र ज्ञान-ध्यान में ही लीन रह जाना पर्याप्त नहीं समझते, वे साधक के लिए एक मानवीय आचार संहिता का भी विधान करते हैं:-

जिह फोकट धरम सबै तजिहै, इकचित क्रिपानिध को जपिहै।
तेऊ या भव सागर को तरिहै, भव भूलि न देह पुनर धरिहै।

इस'फोकट धर्म' के मायाजाल को गुरु जी ने स्थान-स्थान पर लक्षित किया और इसके प्रति सर्वथा तथा सर्वदा जागरुक रहने का संदेश साधक को दिया है:

सभ करम फोकट जान, सभ धरम निहफल मान।
बिन एक नाम अधार, सभ करम भरम बिचार।

गुरु-घर में 'फोकट धर्म' की जांच पड़ताल बहुत सूक्ष्मता से की गई है। गुरु जी ने नाम के अतिरिक्त सभी कर्मों को फोकट कहा है:-

सभ फोकट निहचै करमं

इसी प्रकार पंचम गुरु जी ने भी अज्ञानमूलक कर्म को फोकट कर्म कहा है:-

फोकट करम कहि अगिआनी

दशम गुरु जी ने 'फोकट धर्म' को पाखण्ड आडम्बर तथा दम्भ के विभिन्न सन्दर्भों में लक्षित किया है। चूंकि 'फोकट कर्म' ही धर्म के नाम पर प्रचलित होता आया है, इस लिए सत् धर्म को फोकट धर्म के अपमिश्रण से पृथक् करना दशम गुरु जी की की मुख्य प्राथमिकता कही जा सकती है। यही निर्गुणवाद के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का ओजस्वी रूप है।

जाति-प्रथा

इस फोकट धर्म का सबसे गर्हित रुप जाति-पाति की कुप्रथा में गुरु जी ने लक्षित किया। फलतः जहां कहीं अवसर मिला उन्होंने अकाल पुरुष' को जाति पाति से दूर बताया। इस प्रकार साधक को भी इस कुप्रथा के दुष्प्रभाव से दूर रहने की प्रेरणा दी। 'अकाल पुरुष' का स्वरूप निर्दिष्ट करते हुए वे कहते हैं:-

न ताते न माते, न जातै न पातै।

'जापु साहिब' की जाति विरोधी पंक्तियों का स्पष्टीकरण गुरु जी ने 'अकाल उसतत' में स्थान-स्थान पर किया है:-

बरन, चिहन जिह जात न पात।
जंत्रहु न जात जा की, बापहूं न माइ ताकी।
जाति पाति न गोत्र गाथा।

इत्यादि अनेक स्थलों पर गुरु जी ने जाति प्रथा के विरूद्ध अपनी निर्गुण वादी दृष्टि का विस्तृत रुप से प्रस्तवन किया। पूर्व एंव उत्तरवर्ती निर्गुणवादी विचारधारा के इतिहास में इतने ओजस्वी स्वर के साथ भारत में बद्ध मूल जाति प्रथा को उखाड़ फैंकने का सत्साहस करने वालों में दशम गुरु जी का नाम मूर्धन्य स्थान का अधिकारी है।

मूर्ति पूजा

जाति प्रथा जितना ही प्रचार-प्रसार भारत में मूर्ति पूजा का रहा है। इस प्रचार-प्रसार की निस्सारता को भी गुरु जी ने निर्गुणवादी स्वर में एक इतिहासिक चुनौती दी:-

काहू लै पाहन पूज धरिउ सिर...
काहू लखिउ हरि अवाची[1] दिसा...
कोऊ बुतान[2] को पूजत है, पसु कोऊ म्रितान[3] कौ पूजन धाइओ।
कूर क्रिया उरझिओ सभ ही, जग स्री भगवान को भेदु न पाइओ।

इसी स्वर में गुरु जी ने पत्थर पूजने वालों को मूढ़ कहा है,

कई मूढ पथ्र[4] पूजा करंत।

मूर्ति पूजा की पोल खोलते हुए गुरु जी लिखते हैं:

---

1. दक्षिण दिशा 2. बुत/मूर्ति पाहन कड, 3. मुर्दों की कब्रें/समाधिया 4. पत्थर

काहे कउ पूजत पाहन कउ, पाहन मै परमेसर नाहीं।

....

ताही को पूज प्रभु करिकै जिह पूजत ही अध-ओघ[1] मिटाही।
आधि बिआधि के बंधन जेतक, नाम लेत सबै छुटि जांही।
ताही को धिआनु प्रमान सदा दिन, फोकट धरम करे फलु नाही।

वे आगे लिखते हैं:-

फोकट धरम भयो फलहीन, जु पूज सिला जुगि कोट गवाई।
सिध्धि कहां, सिल के परसै, बल बुध्ध घटी नव निद्धिन पाई।
स्री भगवंत भजिओ न अरे जड, ऐसे ही ऐस सुबैस बिताई।

धर्म-मत के नाम पर अपनी दुकानदारी (लूटमार का धंधा) चलाने वालों के हथकंडों से साधक को इस प्रकार सावधान किया गया है:-

जो जुगीआन को जाइ, कहै सब जोगन को ग्रिह माल उठै दे।
जो परे भाजि संनिआसन को, कहै दत्त के नाम पै धाम लुटे दै।
जो करि कोउ मसंदन[2] को, कहै सरबदरब लै मोंहि अबे दै।
'लेउ ही लेउ' कहे सब को, नर कोउ न ब्रहम बताइ हमे दे।

इस प्रकार 'फोकट धर्म' का प्रत्याख्यान करते हुए तथा 'सुबहान सरदार' को केन्द्र में रख कर सद्धर्म की प्रतिष्ठा की गई है:-

'अछ्छर, आदि, अनील, अनाहद, सत्त सदैव तुही करतारा
जीव जिते जल मै, थल मै, सब कै सब पेट को पेषनहारा
वेद, पुरान, कुरान, दुहुं मिलि भांति अनेक बिचार बिचारा,
और जहान निदान कछु नहि, ए सुबहान तुही सिरदार।'

सर्व-धर्म-सम-भाव के प्रति समर्पित गुरु जी की वाणी में वेद-पुरान-कुरान के साथ-साथ 'सुबहान करतार' भी सहज ही आ विराजे हैं।

तीर्थ-स्नान

अपने इष्ट देव के नाम के साथ जुड़े किसी जलाशय, सरोवर, आदि में स्नान कर लेना पुण्य प्रद है, यह भावना सभी भक्तों-श्रद्धालुओं की रही है। गुरु जी ने इस स्थूल भावना को-फोकट धर्म - के अन्तर्गत रखा है:-

---

1. पाप-पुंज 2. गद्दी धारी/सिक्ख-महंत 3. हठयोग के 84 आसन 4. पातंजल [राज] योग
5. तंत्र-शास्त्र के अंगन्यास 6. यमराज

तीरथ कोट कीए इसनान, दीए बहुदान महाब्रत धारे।
देस फिरिओ करि भेस तपोधन, केस धरे न मिले हरि प्यारे।
आसन[3] कोट करे, असटांग[4] धरे, बहु न्यास[5] करे, मुख कारे।
दीन दइआल अकाल भजे बिन, अंत को आंतक[6] धाम सिधारे।

इस समूचे माया जाल को गुरु जी मात्र अंध-विश्वास रुढ़ि पालन मात्र-बताते हैं:

'मूढ रूढ़ पीटत, न गूढता को भेद पावै,
पूजत न ताहि जाके राखे रहीअतु है।

उत्तर गर्भित प्रश्न : शैली

दशम गुरु जी ने अपनी निर्गुणवादी दृष्टि को अभिव्यक्ति के स्तर पर अधिक प्रभावी बनाने के लिए एक विशिष्ट शैली को अपनाया है। इसे-मात्र सुविधा के लिए- उत्तर गर्भित प्रश्न-शैली- कहा जा सकता हे। इस शैली में न शब्द जाल है और न ही कोई अन्य काव्य-कौतुक। इसमें है उन प्रश्नों की अवतारणा जिसका उत्तर केवल स्वीकृति मूलक ही हो सकता है। गुरु-घर की मर्यादा में रहते हुए इन प्रश्नों का उत्तर निषेधात्मक नहीं हो सकता।

इस शैली के माध्यम से एक ओर तो गुरु जी ने कुछ सार्वभौम तथ्यों का प्रस्तवन किया है तो दूसरी ओर अपने रचना- संसार को भी एक अपूर्व प्रभा-मंडल प्रदान किया है। अकाल पुरष के आध्यात्मिक स्वरुप को साधक के मन में प्रतिष्ठित करने हुए गुरु जी के ये प्रश्न किसी पारम्परिक उत्तर के मुखापेक्षी नहीं हैं:-

सुंदर सरूप हैं कि[1] भूपन को भूप हैं,
कि रूपहु को रूप हैं, कुमत्त[2] को प्रहार हैं।
दीनन को दाता हैं, गनीमन[3] को गारक[4] हैं,
साधन को रछ्छक हैं, गुनन के पहार हैं।

अरबी-फारसी की शब्दावलि से संकलित ये प्रश्न सभी दृष्टियों से महनीय हैं:-

काम को कुनिंदा[5] हैं, कि खूबी के दिहंदा[6] हैं,
गनीमन गरिंदा हैं कि तेज के प्रकासी हैं।

---

1. 'किम्' से विकसित/क्या, 2. कु+मत/दुर्विचार 3. ग़नीम (अरबी) लुटेरा 4. 'ग़र्क' (अरबी) तबाह 5. 'कुन' (फारसी) : करने वाला, 6. 'दिह' (फारसी) : देने वाला।

दशम गुरु संभवतः पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने उपनिषद् युग से चली आ रही ज्ञान प्रधान निर्गुणवादी विचार धारा के सभी विवेकमूलक प्रत्ययों, समता-परक संकल्पों के संस्तुतिपरक एवं अमानवीय असंगतियों-विसंगतियों के प्रत्याख्यानपरक जीवन दर्शन का काव्य की अनन्त सुषमा के साथ सफल रूप से प्रस्तवन किया। इस कोटि के महनीय बौद्धिक प्रयास को अपने लोकोत्तर शौर्य, साहस तथा सामरिक कौशल के साथ सक्रिय रूप देने वाले इस महिमामय मनीषी ने अपनी इस लघु रचना ('अकाल उसतत') में निर्गुणवादी चिन्तन के सभी महनीय तत्वों को विश्वकोशीय स्तर पर प्रामाणिकता के साथ संदर्भित किया है। गागर में सागर भर देने वाले इस महान चिन्तक, प्रबुद्ध लेखक तथा अनुपम समाज (खालसा) के स्रष्टा का यह अवदात-अवदान सर्वथा वंद्य एंव स्तुत्य है।

अध्याय-६

चण्डी चरितावली (तीन खण्ड)

(क) चण्डी चरित्र - उकति बिलास

भारतीय मेधा ने देव-सृष्टि की एक अपूर्व अवधारणा प्रस्तुत की है। इस सृष्टि में गुण (कर्म) के आधार पर सात्विक, राजसी तथा तामसी देव-व्यक्तियों का अद्‌भुत संकल्प रुपायित किया गया है।

इस देव-सृष्टि में जहां देव पुरूषों की महिमा को रेखांकित किया गया है, वहीं दिव्य मातृ शक्ति को भी समुचित प्रतिनिधित्व दिया गया है।

ज्ञान-विज्ञान तथा कला-कौशल की अधिष्ठात्री देवी का पद सरस्वती को प्रदान किया गया है। धन-उपार्जन-संरक्षण का विभाग लक्ष्मी को तथा राष्ट्र (परिवार) की आंतरिक सुरक्षा (दुष्ट-दलन) का प्रभार प्रख्यात वीरांगना चण्डी[1] को सौंपा गया है।

मातृ-शक्ति की प्रतिनिधि रूपा इन देवियों के अधीन विभिन्न क्षेत्रीय कार्यक्रमों को सम्पन्न करने वाली (पदेन) लघु, लघुतर तथा लघुतम देवियों की तो गणना करना भी कठिन है।

इसके साथ ही यह तथ्य भी ध्यातव्य है कि भारतीय संस्कृति के अन्तर्भूत प्रायः सभी मत-मतांतरों ने प्रत्येक व्यक्ति को अपनी-अपनी रूचि-प्रकृति के अनुरूप किसी भी देवी या देवता को अपना इष्ट-आराध्य-स्वीकार करने की पूरी छूट दी है। भारत में ही संभवतः एक ऐसी सामासिक संस्कृति विकसित हुई जिसने मानवीय भावनाओं को पूजा-उपासना के इतने विभिन्न कोटिक आयाम प्रदान किए।

संयोग से दशम गुरु जी ने अपनी आयु के अनेक वर्ष उन क्षेत्रों में व्यतीत किए जहां मातृ शक्ति का लोक मानस पर बहुत गम्भीर तथा व्यापक

---

1. सामान्यतः देवी, काली, भगवती ('भगौती'), दुर्गा आदि विभिन्न नामान्तरों के साथ शक्ति की पूजा-उपासना लगभग समस्त भारत वर्ष में प्रचलित है। 2. वे लिखते हैं : ***'दिस चाल हम ते पुनि भई, सहर पांवटा की सुधि लई'***।

प्रभाव सदा विद्यमान रहा है। किशोरावस्था के कुछ वर्ष उन्होंने 'पांउटा'[2] (सिरमौर रियायतः नाहनः हिमाचल प्रदेश) में व्यतीत किए।

यह पूरा क्षेत्र मातृ-शक्ति के चण्डी रुप की उपासना करता आ रहा है। नाहन के प्रसिद्ध शक्ति पीठ 'कालिस्थान', नाहन से कुछ दूर पहाड़ के शिखर पर 'जमटा' (यम घण्टा)[1],वहां से आगे 'रेणुका' (परशुराम की माता) आदि क्षेत्रों में अनेक देवियों के असंख्य उपासक अपनी-अपनी पद्धति के अनुसार पूजा-अर्चना करते आ रहे हैं। नाहन में दशम गुरु जी के पधारने का विवरण तो वहां के गुरुद्वारे के द्वार पर ही उत्कीर्ण है।

पांवटा-क्षेत्र से कुछ ही दूर 'त्रिलोकपुर' में 'बाला सुन्दरी' देवी की पूजा-अर्चना का इतिवृत्त भी पर्याप्त प्राचीन जान पड़ता है। उधर "आनन्दपुर साहिब" के आस पास पर्वतीय क्षेत्रों में देवी पूजा का प्रचलन बहुत व्यापक स्तर पर होता आ रहा है। आनन्दपुर के पास पर्वत शिखर पर 'नैना देवी' का मंदिर प्राचीन काल से ही भक्तों को आकर्षित करता आ रहा है। कांगड़ा (हिमाचल प्रदेश) की ज्वाला मुखी देवी का प्रसिद्ध शक्तिपीठ भी दशम गुरु जी के कार्य क्षेत्र की परिधि में ही था।

चूंकि दशम गुरु अपने धर्म युद्ध के लिए एक व्यापक जनाधार तैयार करना चाहते थे, इस लिए उन्होंने चण्डी के उपासकों के सामने चण्डी के अतुल पराक्रम तथा दानव दलन के प्रति चण्डी की प्रतिबद्धता को मनोरम कथा तथा रूचिर साहित्यिक रूप में प्रस्तुत किया। गुरु जी का एकमात्र उद्देश्य यही था कि चण्डी के भक्त अपनी आराध्य शक्ति की 'दुष्ट दमन' संबंधी रीति नीति से प्ररणा लें। समसामयिक सत्ताधारी दानवों के दमन हेतु गुरु जी उनका भरपूर सहयोग चाहते थे।

अकाल पुरूष के अतिरिक्त किसी भी देवी देवता की पूजा-उपासना के पक्षधर वे नहीं थे। इस संबंध में उनके ये आश्वस्ति वचन बहुत महत्वपूर्ण हैं:

पाइ गहै जब ते तुमरे, तब ते कोऊ आंख तरे नहीं आनयो।
राम रहीम पुरान कुरान, अनेक कहे मत, एक न मानयो।

(रामावतार)

इसी प्रकारः-

मैं न गनेसहि प्रिथम मनाऊं। किसन, बिसन कबहुं नहीं धियाऊं।
कान सुने, पहिचान न इन सों। लिव लागी मोरी पग इन सों।
महाकाल रखवार हमारो। महालोह मैं किंकर थारो।

(कृष्णावतार)

---

1. 'नव दुर्गाऔ' में से एक देवी।

'अकाल उसतुति' में गुरु जी ने 'भवानी' (चंडीः देवी) को अकाल पुरूष की चरण सेविका के रूप में भी चित्रित किया हैः-

अनहद रूप, अनाहद बानी
चरन सरन जिह बसत भवानी।

(अकाल उसतुति)

अपने शुभ कर्मों के अनुष्ठान के लिए व्यापक जनाधार तैयार करना-यथा संभव रूप से सबको साथ लेकर चलना-निश्चय ही आदि गुरु जी के आदेश का पालन ही थाः-

सतिगुरु ऐसा जाणीऐ, जो सभसे लए मिलाए।

इस संबंध में यह तथ्य भी ध्यान रखना होगा कि गुरु जी इस रचना को 'उकति बिलास' (वचन विलास) बताते हैं। इसी सन्दर्भ में वे लिखते हैंः-

कउतक हेत रची कवि ने

तात्पर्य यह कि गुरु जी 'चण्डी चरित्र को काव्य-कौतुक तथा कथा कौतुहल के लिए ही प्रस्तुत कर रहे हैं। इसे कोई धार्मिक अथवा आध्यात्मिक महत्व देना उन्हें अभीष्ट नहीं है।

संरचना-तंत्र

इस रचना में आठ अध्याय हैं। इस के प्रतिपाद्य को इस पद्य में रेखांकित किया गया हैः

प्रमुद करन, सब भै हरन, नाम चंडिका जास।
रचौं चरित्र बिचित्र तुअ, करो सुबुध्ध प्रकास।

तथा

क्रिपा सिंधु तुमरी क्रिपा, जो कछु मो परि होइ।
रचौं चंडिका की कथा, वाणी सुभ सब होइ।

इसके प्रथम अध्याय में मधु-कैटभ-बध, द्वितीय अध्याय में महिषासुर वध, तृतीय में 'धूम्र नैन' वध, छठे में निशुंभ वध, सातवें में शुंभ वध और आठवें में चंडी स्तुति तथा इस चरित्र के गायन-पठन आदि की 'फल-श्रुति' के साथ रचना समाप्त हो जाती हैः-

ग्रंथ सतिसइआ को करिओ, जा सम अवरु न कोई।
जिह नमित कवि ने कहिओ, सु देह चंडिका सोई।

स्रोत

'चण्डी चरित्र' के प्रत्येक अध्याय के अंत में इसे मार्कण्डेय पुराण पर आधारित बताया गया है। एक अन्य स्थान पर इस रचना का स्रोत 'सतसई' (दुर्गा सप्तशती) में निहित बताया गया है।

वस्तुतः 'दुर्गा सप्तशती' भी मार्कण्डेय पुराण पर ही आधारित रचना है। फलतः चण्डी चरित्र को इन दोनों स्रोत-ग्रंथों का स्वतंत्र रुपांतर कहा जा सकता है। इसे अनुवाद समझना भूल होगी।

लालित्य

'चण्डी चरित्र' वीररसमयी रचना है। फलतः इस में वीर रस की प्रचुर उपादान सामग्री विद्यमान है- दैत्य महिषासुर का युद्ध कौशल देख कर सूर्य भी स्तंभित हो गए, बहते हुए रक्त प्रवाह को देख कर ब्रह्मा भी अपनी वेद-विद्या भुला बैठेः-

जुध्ध कीओ महिषासुर दानव,
देखत भान चलै नहीं पंथा।
स्रोन[1] समूह चलिओ लषि कै,
चतुरानन भूलि गए सभ ग्रंथा।

चंडी के प्रचंड प्रहारों से त्रस्त दानव मैदान से भाग खड़े हुएः

मारि संघारि दए तब भूप, बिना करै कउन लराई।
कांपि उठे अरि, त्रास हिए धरि, छाडि दई सभ पउर षताई।[2]
दैत चले तजि खेतहि, इउ जैसे बड़े गुन लौभ ते जात[3] पराई।

युद्ध में मची इस भगदड़ का एक और चित्र इस प्रकार अंकित किया गया हैः-

भानु ते जिउं तम, पउन ते जिउं घन, मोर ते जिउं फन[4], तिउं सकुचाने
सूम[5] ते जिउ जस, बिओग ते जिउ रस, पूत कपूत ते जिउं बंस हाने
धरम जिउ कोध ते, भरम सुबुध्ध ते, चंडी के जुध ते दैत पराने।

निश्चय ही यह समस्त बिंब विधान अत्यंत सुरूचिपूर्ण एंव मार्मिक है। गुरु जी ने इस रचना के लालित्य का विवरण इस प्रकार दिया हैः-

1. रक्त 2. पौरुष 3. दूर हो जाते हैं। जैसे महान् गुणों को लोभ ध्वस्त कर देता है 4. कणी/सांप 5. कंजूस

चंड चरित्र कबित्तन मे बरनिउ,
सभ ही रस रुद्र[1] मई है।
एक ते एक रसाल भइओ,
नख ते सिख लउ उपमा सु नई है।
कउतक हेत रची कवि ने,
सतिसय की कथा इह पूरी भई है।
जाहि नमित्त पढै सुनिहै नर,
सो निसचै कर तांहि दई है।

अपने लिए गुरु जी की यह कामना कितनी उदात्त, अपूर्व एंव प्रेरणा प्रद है-

देह सिवा बर मोहि इहै, सुभ करमन ते कबहूं न टरौं।
न डरौं अरिसौं, जब जाइ लरौं, निसचै करि अपनी जीत करौं।
अरु सिख हौं अपने ही मन को, इह लालच हउं गुण तो उचरौं।
जब आव[2] की औध निदान बनै, अति ही रण में तब जूझ मरौं।

(ख) चंडी चरित्र (द्वितीय)

श्री दशम ग्रंथ की 'चण्डी चरितावली' में 'चंण्डी चरित्र-उकति बिलास' के बाद 'चंण्डी चरित्र' संकलित है।

इसका प्रारम्भ ***"एक ओंकार वाहिगुरु जी की फतह"*** के साथ और ***"अथ चंण्डी चरित्र लिख्यते"*** इस वाक्य के साथ हुआ है। स्पष्ट है कि इस में 'मंगल' की परम्परा का पालन नहीं हुआ[3]।

इसकी कथा वस्तु 8 अध्यायों में विभक्त है। महिषासुर के त्रैलोक्य विजय के साथ कथा प्रारंम्भ होती है तथा अध्याय के अंत में महिषासुर के वध उपरांत चंडी की विजय गाथा दुहराई गई है।

तदनन्तर क्रमशः धूम्रनैन, चंड-मुंड, रक्त बीज, निसुंभ और सुंभ राक्षसों के युद्ध और अंततः सर्व-असुर-संहार के साथ कथा समाप्त होती है। 'जैकार-सबद' सप्तम तथा चण्डी-उसतत बरननं' अष्टम अध्याय में मिलता है।

असुर रक्त बीज की मृत्यु का यह चित्र द्रष्टव्य है:

हुओ स्रोण हीनं भयों अंग छीनं। गिरियो अंत भूमं मनो मेघ भूमं।

---

1. रौद्र रस 2. आमु 3. कुछ विद्वानों का विचार है इसके कुछ अंश दशम ग्रंथ की अन्य रचनाओं में-भ्रांति वश-मिल गए है।

(ग) 'वार स्री भगउती जी की'

इस चरितावली की यह तीसरी रचना है। प्रारम्भ में ***"एक ओंकार वाहिगुरु जी की फते"*** के साथ तथा 'स्री भगउती जी सहाइ' इस वाक्य से इस रचना को प्रस्तुत किया गया है।

प्रिथम भगौती सिमर कै, गुरु नानक लई धिआइ।

के साथ नवम गुरु तेग बहादुर जी तक सभी नौ गुरु व्यक्तियों का स्मरण इस कृति में किया गया है।

तदनंतर शुंभ-निशुंभ आदि दैत्यों का भगवती के साथ भयंकर युद्ध वर्णित हुआ है। इसमें दैत्यों की मृत्यु भगवती के हाथों होती बताई गई है। वीर रस के अच्छी व्यंजना इसमें उपलब्ध है और इसी कारण यह रचना पर्याप्त लोकप्रिय भी है। शुंभ-निशुंभ वध के पश्चात् भगवती की विजय को इन पंक्तियों में रूपायित किया गया हैः-

सुंभ-निसुंभ पठाइआ जम दे[1] धाम नो[2]।
इंदर सदिद्[3] बुलाइआ राज अभिभेख[4] नो।
सिरु ते छत्र फिराइआ, राजे इंदर दे।
चउदह लोकां छाइआ, जसु जगमात दा।

इसकी भाषा पर पंजाबी शब्दों, कारक चिन्हों, क्रिया रुपों का पर्याप्त प्रभाव है। इसका छन्द भी पंजाबी का अत्यंत लोकप्रिय छंन्द है। यही कारण है कि पंजाबी क्षेत्रों में इस रचना को बहुत सम्मान मिलता आ रहा है।

निष्कर्ष

चण्डी चरित्र संबंधी ये तीन रचनाएं श्री दशम ग्रंथ में संकलित हैं। एक पौराणिक वीरांगना के शौर्य, उसके औदार्य तथा उसके भक्त वत्सल रूप की विभिन्न झांकियां इन तीनों रचनाओं में उपलब्ध हैं।

इसके अतिरिक्त दशम गुरु जी ने पौराणिक अवतारों, वीरों तथा लोक जीवन को उच्चतर प्रेरणा देने वाले जिन महापुरूषों की एक शोभा यात्रा (अवतार कथा) का अयोजन आगे किया है, उसकी प्रथम पंक्ति में पहला स्थान चण्डी को दिया है। मातृ शक्ति के प्रति गुरु जी की यह सम्मान भावना अत्यंत प्रेरणा प्रद है।

---

1. के/पंजाबी 2. को/पंजाबी 3. आवाज़ देकर/शब्दसद्द/पंजाबी 4. अभिषेक

अध्याय - ७

बचित्र नाटक : स्वरुप एवं संरचना-तंत्र

स्वरुप

श्री दशम ग्रंथ में संकलित इस रचना में लगभग 6500 पद्य उपलब्ध हैं। विभिन्न प्रतियों में यह संख्या भिन्न-भिन्न रुप से दी गई है। इसका प्रारम्भिक अवतरण इस प्रकार है:-

'एक ओंकार सतिगुरु प्रसादि।
अथ बचित्र नाटक ग्रंथ लिख्यते त्व प्रसादि।
स्री मुख पातिसाही १०।

दोहरा

'नमसकार स्री खडग[1] को, करौं सु हितु चितु लाइ।
पूरन करो ग्रंथ इह, तुम मुहि करहु सहाइ।'

नामकरण

दशम गुरु जी की यह रचना नाटकीय विधि-प्रविधि के सांचे में ढली हुई नहीं है और न इसमें पारंपरिक रंगमंच का कोई विधान है और न ही तत् संबंधी किसी भी रंग-संकेत (पात्रों के संवाद तथा उनके मंच पर आने जाने के संकेत ही) इसमें उपलब्ध हैं। फलतः इस रचना की नाटकीयता की खोज नाटक की समकक्ष तथा समानरूपा किसी अन्य सहित्यिक विधा के माध्यम से की जानी चाहिए।

वस्तुतः मध्य युग में भारत की समृद्ध नाटय-परम्परा रंगमंच के अभाव में अपने पारंपरिक रंग-विधान, रंग संकेत तथा अभिनय की गरिमा से पूर्णतः वंचित हो चुकी थी। तत्कालीन अनुदार अ-लोक तांत्रिक तथा धर्मान्ध इस्लामी प्रशासन को नाट्य कला फूटी आंखों भी नहीं सुहाती थी। फलतः नाट्य कला केवल नाम-शेष रह गई। तत् कालीन कतिपय नाटककारों ने काव्य ओर नाटक के तात्विक समन्वय से 'काव्य-नाटक' अथवा 'नाटक-काव्य' नामक

1. 'खडग' और 'असि' के साथ-साथ तेग़ (फारसी-तलवार) को भी दशम गुरु जी नमस्कार करते हैं। अ़काल पुरूष के अलौकिक बल-वीर्य का प्रतीक है, खडग। परन्तु यह मात्र प्रतीक है। इसे ही 'काल' या 'अकाल पुरुष' (ब्रह्म) मान लेना भूल होगी।

एक नवीन विधा की उद्‌भावना की। इस विधा के अनुसार रचना को 'नाटक' ही कहा जाता था। परन्तु नाटकीय व्यापार पद्यों के माध्यम से ही प्रस्तुत किया जाता था।[1]

कतिपय प्राचीन नाट्य कृतियों को-संस्कृत से अनूदित करते समय भी नाटक की अपेक्षा 'नाट्य काव्य' का रुप दिया जाने लगा। हनुमान नाटक तथा प्रबोध चन्द्रोदय इसी कोटि की कृतियां हैं। इन दोनों कृतियों के अनुवाद पंजाब में किए गए और इन्हें अपेक्षित लोकप्रियता भी मिली। साथ ही यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि दशम गुरु जी 'हनुमान नाटक'[2] के प्रशंसक थे।

हनुमान नाटक (महानाटक)

मूलतः यह नाटक संस्कृत में लिखा गया था। इसके लेखक की ठीक-ठीक पहचान अभी तक नहीं हो सकी[3]। पंजाब में इसका अनुवाद हृदय राम भल्ला ने ब्रज भाषा (लिपिः गुरुमुखी) में किया। हृदय राम की इस ब्रजी टीका को पंजाबी रूप दिया योगी पं. शिवनाथ जी ने।[4]

दूसरी ओर, यह विश्वास करने के पर्याप्त कारण हैं कि दशम गुरु जी भारतीय नाट्य परम्परा के विभिन्न आयामों से भी परिचित थे। भारतीय नाट्य-कला के शलाका पुरूष-कालिदास- की साहित्यिक सृष्टि उनके ज्ञान की परिधि में थी। कालिदास को उन्होंने ब्रह्म का अवतार बताया है और उसके 'काबि' (काव्य नाटक) जगत् को इस प्रकार रेखांकित किया हैः-

इह ब्रह्म बेद निधान, दस असट सासत्र[5] प्रमान,
भए कालिदास लखि रीझे बिक्रमजीत[6]।
रघु काबि[7] कीन सुधार, करि कालिदास वतार,
कहं लौ बखानौ तउन, जो काबि कीनौ जउन।

(बचित्र नाटकः ब्रह्म अवतार)

---

1. इस कोटि की अनेक रचनाएं 16वीं-17वीं शतियों में लिखी गईं। रामायण महानाटक, देव माया प्रपंच नाटक, प्रबोध चन्द्रोदय तथा हनुमान नाटक आदि रचनाएं 'नाटय-काव्य' कही जाती हैं। विस्तार के लिए देखिएः (अ) हिन्दी नाटय साहित्य (ब्रजरत्न दास), (आ) हिन्दी नाटक साहित्य का आरम्भ (डॉ. सोमनाथ), (इ) हिन्दी नाटकः उद्‌भव और विकास (डॉ. दशरथ ओझा) आदि। 2. भाई कान्हसिंह के अनुसार इस नाटक की एक प्रति मुग़ल सम्राट् बहादुर शाह ने गुरू जी को भेंट रूप में दी थी। महान कोश। 3. पिछली पीढ़ी के प्रो. मैक्स मूलर, पिशल, विंतर्नित्स और कीथ आदि विद्वान इस नाटक से संबंधित अनेक समस्याओं से जूझते रहे हैं। 4. योगी जी का यह अनुवाद लाहौर से प्रकाशित हुआ (सन् 1888)। इस की भूमिका में वे लिखते हैंः- *इस ग्रंथ दी टीका करण लई बहुते नाटक पुराणे पुराणे इकठ्ठे कीत्ते अते संस्कृत नाटक वी दो तिन्न पास रखे पर तद वी सरवग्ग ईश्वर ही हुंदा है'* । विस्तार के लिए देखें हनुमान नाटकःआलोचना (पंजाबी) दिसंबर 1963। लेखकः डॉ. राजगुरु। 5. 18 शास्त्र 6. सम्राट् विक्रमादित्य, 7. रघुवंश महाकाव्य

संभवतः मध्य युग के किसी भी 'भाषा कवि ने कालिदास को इतनी सार्थक श्रद्धांजलि अर्पित नहीं की।

प्रबोध चन्द्रोदय

श्री कृष्ण मिश्र ने यह नाटक संस्कृत में लिखा। इसे 'नाट्य-काव्य' तथा गुरुमुखी रुप दिया सन्त गुलाब सिंह जी ने (संवत् 1846)। इसकी पंजाबी टीका लिखी योगी पं. शिवनाथ जी ने (1905 ई०)। गुलाब सिंह जी लिखते हैं:-

बहु नाटक हैं भव मंडल मैं, नरनाहन[2] को यह नाट नयो।

दोहरा

'कहने को यह नाट है, दरपण अहे बिचार।
पावे पावन मोख को, कीनो याहि बिचार।

(अंक ६)

इसके अतिरिक्त 'चित्र' (विचित्र) शब्द नाट्य शास्त्र का एक पारिभाषिक शब्द है। भरत मुनि ने नाटय कर्म के प्रमुख उपकरणों की सूची देते समय 'चित्र' का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है कि 'भगवान् शंकर के अनुसार पुरूषों के नाच (नृत्त) की योजना से नाटकीय व्यापार को चित्र (मिश्रित) रूप दिया जा सकता है'।[3]

नाट्य कर्म के इस मिश्रित रुप को 'चित्र' विधान कहा जाता है। संभवतः दशम गुरु जी ने विचित्र शब्द इसी स्रोत से ग्रहण किया और अपनी इस कृति में प्रस्तुत देवी, देवता, दैत्य और मनुष्य आदि विभिन्न (मिश्रित) वर्गों के कार्य कलाप का प्रस्तवन किया। फलतः इस कृति को 'चित्र' (विचित्र) कहा जाना नाट्य शास्त्र की दृष्टि के अनुकूल है।

यदि इस रचना के केवल इतिहास-सम्मत कथानक के वैचित्र्य पर ही ध्यान केन्द्रित करें तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि दशम गुरु जी का अपना जीवन ही नाटकीय आरोह-अवरोह की एक अप्रतिम झांकी प्रस्तुत करता है। अपनी छोटी सी आयु में ही उन्हों ने जो कुछ देखा या सुना, आनन्द और सन्ताप की सीमान्त स्थितियों के जिस रोमांचक घटना क्रम के वे प्रत्यक्ष द्रष्टा अथवा भोक्ता रहे हैं, वह सब कुछ एक दम अप्रत्याशित था। फलतः

---

1. इस नाटक की भूमिका में योगी जी ने संस्कृत के एक और नाटक 'भर्त्र्हरि निर्वेद' का पंजाबी अनुवाद करने की सूचना भी दी है। योगी जी मेरे पितामह थे और पंजाब यूनीवर्सिटी लाहौर में पंजाबी के प्रथम प्रौफेसर थे 2. राजाओं 3. देखिएः नाटय शास्त्रः अध्याय ४ः पृष्ठ ३७ (पंजाबी अनुवादः डॉ. राजगुरु)

उनका अपना जीवन ही एक उच्च कोटिक नाटकीय वैचित्र्य के समूचे सम्भार को अपने भीतर समेटे हुए है। निश्चय ही उनकी अपनी कथा किसी भी नाट्य कृति को पर्याप्त प्रामाणिकता तथा सहज नाटकीयता प्रदान करने में पूर्णतः सक्षम है।

नाटकीय विधि विधान की जकड़न से उन्मुक्त उनकी यह कृति भारतीय नाट्य परम्परा में अ-नाटकीय होते हुए भी एक अद्वितीय नाट्य-कृति के रूप में मूर्धन्य स्थान की अधिकारिणी है, इसमें सन्देह नहीं।

संरचना-तंत्र

एकाधिक स्तुति समूह (नान्दी-पाठ) दशम गुरु जी की'अपनी कथा' चण्डी चरितावलि, अवतार-कथा-समुच्चय तथा 'मीर महदी' की गाथा प्रभृति विविध रचनाओं का एकत्र संकलन उपलब्ध है, 'बचित्र नाटक' के कलेवर में। अनेक सांस्कृतिक (साहित्यिक) स्रोतों से संकलित इस कथा सामग्री को एक नाटकीय अन्विति प्रदान की है, गुरु जी की अद्वैत दृष्टि तथा मानव-मंगल के प्रति उनकी अनन्य प्रतिबद्धता ने।

नान्दी[1]

बचित्र नाटक का 'नान्दी पाठ' जहां पर्याप्त विस्तृत है, वहां दर्शन तथा अध्यात्म की दृष्टि से भी उसका मूल्य और महत्व अकल्पनीय है। चूंकि दशम गुरु स्वयं इस नाटक में सूत्रधार की भूमिका में अवतरित हो रहें हैं, इसलिए उनका यह नान्दी पाठ सामान्य स्तुति (मंगल वचन) से एक दम विलक्षण प्रतीत होता हैः-

खग[2], खंड बिहंड[3] खल दल खंड, अतिरण मंड, बरबंड[4]।
भुज दंड, अखंड तेज प्रचंड जोति अमंड, भान प्रभं[5]।
सुख संता करणं[6], दुरमति दरणं[7], किलबिख हरणं, अस सरणं।
जै जै जग कारण, स्रिस्ट उबारण, मम प्रतिपारण[8], जै तेगं।

वीर रस से ओत प्रोत, रसानुकूल अक्षर-शब्द योजना से सम्पन्न, आध्यात्मिक चेतना से अनुप्राणित तथा १०१ पद्यों में निबद्ध इस कोटि का नान्दी पाठ अन्यत्र दुर्लभ है।

---

1. दशम ग्रंथ के लिपिक-मुद्रक इसे 'श्री काल जी की उसतति' के रुप में प्रस्तुत करते हैं।
2. 'खड्ग' रूप में विकसित हुआ। खग्ग को छांद के अनुरोध पर 'खग' रुप में रख दिया गया।
3. वि+खंड/टुकड़े-टुकड़े करना 4. बलवान 5. भानु-प्रभ/ सूर्य के समान प्रकाशमान 6.संतों-सज्जनों को सुख देने वाला 7. दलन करने वाला 8. पालन करने वाला

इस नान्दी पाठ में 'काल' के सामर्थ्य को सर्वोपरि बताते हुए समस्त देव-सृष्टि को भी 'काल' की 'किंकरी' के रूप में प्रस्तुत किया गया है:-

कालहि पाइ भयो भगवान कालहि पाइ भयो ब्रह्मा सिव,
और सकाल सबै बसि काल के, एक ही काल अकाल सदा है।

गुरु जी सामाजिक नव जागरण के अपने अभियान में प्रमुख अवरोधक मानते हैं, फोकट धर्म (पाखण्ड-अनाचार) को:-

किते नास मूंदै भए ब्रह्मचारी, किते कंठ कंठी जटा सीस धारी।
किते चीर कानं, जुगीस[1] कहायं, सभै फोकटं धरम कामं न आयं[2]।

इस नान्दी-पाठ का यह अन्तिम पद्य गुरु जी की साधना का निष्कर्ष जान पड़ता है:-

कागद दीप सभै करिकै अरु सात समुद्रन की मसु कैहे।
काट बनसपति सगरी लिखबेहु के लेखन काज बनैहे।
सारसुती बकता करिकै जुगि कोटि गणेसि के हाथ लिखैहे।
काल क्रिपाल बिना बिनती, नतउ प्रभु नैक रिझेहे।

पुष्पदन्त के एक प्रसिद्ध संस्कृत पद्य की छायाः

असित गिरि समं स्यात् कज्जलं स्निन्धु पात्रम्
......तदपि तव गुणनामीश पारं न याति।

गुरु जी के उपर्युक्त छन्द पर स्पष्ट ही है। परन्तु बिम्ब विधान का यह साम्य 'क्रिपाल काल' के निर्गुणवादी। संकल्प के समक्ष पुष्पदन्त के सगुण ईश (शंकर) का संकल्प फीका पड़ जाता है।

अपनी कथा (सोढ़ी बंस : उत्पत्ति)

नांदी-पाठ के अनंतर गुरु जी-सूत्रधार की भूमिका को अग्रसर करते हुए 'अपनी कथा' की प्रस्तुति 'प्रवेशक[3] -विधि' से करते हैं। इस 'कथा' के मंगल-स्वरुप ये पद्य नितांत मार्मिक हैं:-

तुमरी महिमा अपर मपारा।
जाका लहिओ न किनहु पारा।
मूक उचरै सासत्र खटि[4], पिंग[5] गिरन[6] चढ़िलाइ।
अंध लखे, बहरो सुनै, जो काल क्रिपा कराइ।

1. योगी+ईश/जोगियों का सरदार 2. काम नहीं आया/कान, कहायं, कामं, आयं जैसे अनुस्वारांत रुप बहुत रोचक हैं। 3. नाटकीय कथा के आगामी आयामों की सूचना विधि। 4. षट् शास्त्र 5. पंग पंगु 6. गिरि पर्वत

प्रभृति पद्यों में गुरु जी का सहज विनीत भाव, उनकी अप्रतिम प्रतिभा तथा गुरु गम्भीर एंव सर्वग्राही दृष्टि का सजीव चित्र देखा जा सकता है।

नाट्य शास्त्र की परिधि में इसे 'प्रवेशक' कहा जा सकता है। नांदी-पाठ के अनंतर सूत्रधार नाटककार के व्यक्तित्व, कृतित्व तथा उसके वंश की महिमा का प्रस्तवन किया करता है।

चूंकि यहां सूत्रधार एंव नाटककार की दो विभिन्न भूमिकाओं में गुरु जी स्वयं अवतरित हो रहे हैं, इस लिए गुरु जी सृष्टि-विकास का सूत्र थाम कर सूर्य (रघु) वंशी रामचंद्र, लव और कुश की पृष्ठभूमि में अपनी पावन कुल परम्परा का परिचय देते हैं।

वे कहते हैं कि राम के पुत्रों लव और कुश ने 'मद्र' (पंजाब) देश में दो नगर वसाए। लव ने 'लवपुर' (लहुरः लाहौर) और कुश ने 'कसूर' बसाया।[1]

लव और कुश के वंशजों को उनके शत्रुओं ने मद्र देश से भगा दिया और वे भाग कर 'सनौढ'[2] देश चले गए। वहां के राज परिवार में उनके एक वरिष्ठ वंशज का विवाह हुआ हौर इस विवाह से उत्पन्न पुत्र को 'सोढ़राय' नाम दिया गया। यहां से 'सोढ़ वंश' अस्तित्व में आया।

कालांतर में सोढ़ी वंश में आंतरिक कलह भड़क उठा। भयंकर युद्ध में लव के वंशज जीत गए और कुश के वंशजों को पराजित होना पड़ा।[3] वे भाग कर काशी-वास करने लगे। वहां उन्होंने वेद पढ़े और 'बेदी' नाम से प्रसिद्ध हुए। बाद में 'कैकय' (पश्चिमोत्तर पंजाब) के राजा ने उन्हें पंजाब लौट आने का निमंत्रण दिया। यहां आकर उन्होंने वेद (धर्म) प्रचार का कार्यक्रम चालू किया। कैकय नरेश उनसे इतने प्रभावित हुए कि वे उन्हें अपना राज-पाट सौंप कर स्वयं तपस्या करने जंगलों में चले गए।

अब बेदी लोग राज करने लगे। इस बेदी वंश में नानक राय ने जन्म लिया। आदि गुरु नानक के पश्चात् 9 गुरु व्यक्तियों का अति संक्षिप्त[4] परिचय गुरु जी ने इस प्रसंग में दिया है। इस परिचय में अन्तर्निहित है लोक-कल्याण तथा जन-जागरण के प्रति गुरु-घर की अप्रतिम प्रतिबद्धता।[5] गुरु तेगबहादुर

1. ***तही तिनै थापै दुइपुरवा, एक कसूर दुतीय लहुरवा।*** (पद्य : 24) 2. मथुरा-भरतपुर का क्षेत्र/ महान कोश 3. ***'लवी सरब जीते, कुसी सरबहारे'*** 4. संक्षेपः- कलात्मक संक्षेप के प्रति दशम गुरु जी की जागरूकता कहीं भी लक्षित की जा सकती हैः- ***'कहा लगे करि कथा सुनाऊं। ग्रंथ बढ़न से अधिक डराऊं।*** प्रभृति वाक्य अनेकशः उपलब्ध हैं। 5. गुरु अमरदास जी के संबंध में ***'जन दीपक ते दीप जगायो'*** जैसे कथन गुरु-घर की इस प्रतिबद्धता को रेखांकित करते हैं।

जी के अपूर्व आत्ममेध तथा अन्याय के विरूद्ध उनकी प्रबल हुंकार को दशम गुरु जी ने इन शब्दों में स्मरण किया है:-

साधनि[1] हेत इति जिनि करी।
सीसु दीआ पर सी न उचरी।

तथा

ठीकरि[2] फोरि दिलीस सिरि,
प्रभु पुरि कीआ पयान[3]।
तेग बहादुर सी क्रिया
करी न किनहु आन।
तेग बहादुर के चलत
भयो जगत को सोक।
है है है सभ जग भयो,
जै जै जै सुर लोक।

1. साधु-संत 2. शरीर का ठीकरा 3. प्रयाण

अध्याय-८

चउबीस अउतार एवं उपावतार

'अपनी कथा' के पश्चात् गुरु जी पौराणिक परंपराओं के अनुसार 'चउबीस अउतार' कथा प्रस्तुत करते हैं। इस कथा की पूर्व पीठिका में 'चण्डी चरितावलि' विद्यमान है। इसके अतिरिक्त अवतार कथा में भी चण्डी की वरिष्ठता सर्वत्र देखी जा सकती है। पंजाब में इस पौराणिक अवतार कथा के प्रथम प्रस्तोता थे 'मिहरिवानु'।[1] उन्होंने 'सुखमना सहंसर नाम' में पौराणिक अवतारों की कथा पर्याप्त विस्तार तथा सगुण भावना के साथ लिखी हैं।

दशम गुरु जी के समक्ष संभवतः ये कथाएं थीं और वे मिहरिवानु के (गुरु-घर की मर्यादाओं के विरूद्ध) कृष्ण की सगुण भक्ति संबंधी क्रिया कलापों से भी परिचित रहे होंगे, इसमें सन्देह नहीं। संभवतः मिहरिवानु तथा अन्य 'मीणा' लेखकों की अवतार धारणा एंव उनकी सगुण वादी दृष्टि का प्रत्यख्यान भी गुरु जी की इन अवतार कथा एक अवांतर उद्देश्य रहा होगा।[2]

अवतार : अवधारणा

अवतार का संकल्प भारतीय मनीषा का एक अद्वितीय चमत्कार कहा जा सकता है। ईश्वर का भूमण्डल पर मनुष्य (योनिज अथवा अयोनिज) रूप में अवतरित होना तथा अधर्मी-विधर्मी-आततायी दानव वर्ग के संहार का व्यापक कार्यक्रम सम्पन्न करना अवतारों का मुख्य उद्देश्य बताया गया है। गीता में लिखा है:

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत,
अभ्युत्थान मधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्'।

भारत के अतिरिक्त इस कोटि का संकल्प अन्यत्र नहीं मिलता। दशम गुरु जी ने गीता के इसी आशय की पुष्टि इस प्रकार की है:-

---

1. 'मिहरिवानु' मनोहर दास (1580-1640ई०): पचम गुरु अर्जुन देव जी का भतीजा था। विस्तार के लिए देखिए : 'गोसटि गुरु मिहरिवानु': समादक डॉ. राजगुरु (1974) 2. मिहरिवानु और उसके गुरु-घर विरोधी अनुयायिकों को मीणा (कमीना?) कहा जाता था।

जब जब होत अरिस्ट अपारा।
तब तब देह धरत अवतारा।

अपनी निर्गुणवादी दृष्टि से गुरु जी अवतार भावना का विश्लेषण इस प्रकार करते हैं:-

काल सबन को पेख तमासा।
अंत काल करत है नासा।

काल की इस सर्वातिशायी शक्ति को गुरु जी स्थान-स्थान पर रेखांकित करते चलते हैः-

काल सभन का करत पसारा।
आपन रूप अनंतन धरहि।
आपहि मध लीन पुन करहि।

अवतार संबंधी अपनी दृष्टि को गुरु जी इन शब्दों में रूपायित करते हैं:-

इन महि स्रिस्टि सु अवतारा।
जिन महि रमिआ राम हमारा।

अवतारों की- अकाल पुरूष की तुलना में सीमित शक्तियों का उल्लेख गुरु जी सर्वत्र करते चलते हैं:-

जो चउबीस अउतार कहाए।
तिन भी तुम प्रभु तनक न पाए।

निश्चय ही गुरु जी किसी भी अवतार को आवश्यकता से अधिक महत्व नहीं देते। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि प्रभु के मात्र एक दिव्य अंश का ही दर्शन अवतार में होता है, फलतः अवतार को प्रभु नहीं माना जा सकता। इसी लिए वे कहते हैं:-

ब्रह्मादिक सबही पच हारे।
बिसन महेस्वर कउन बिचारे।

वस्तुतः गुरु जी की दृष्टि आदि गुरु जी की अवतार संबंधी मान्यताओं का विपुल पल्लवन है। आदि गुरु जी ने कहा है:-

केत्तीआं कण्ह[1] कहाणीआं, केत्ते राम रवाल।[2]

1. कृष्ण 2. रव,धूल/ महानकोश

इस अवतारवाद से जुड़े मूढ संस्कारों से दशम गुरु जी साधक को सावधान भी करते हैं:-

जग आपन आपन उरझाना।
पार ब्रहम काहू न पछाना।
इक मढीअन[1], कबरन[2] पै जाही।
दुहूंअन मै परमेस्वर नांही।
जाते छूटि गयो भ्रम डर का।
तिह आगे हिंदू किआ तुरका।
इक तसबी[3], इक माला पकड़ी।
एक कुरान पुरान उचरहि।
करत विरुद्ध[4] गए मर मूढा।
प्रभु को रंगु न लागा गूढा'।

'दुई' के गोरख धंधे में उलझे लोगों की दुर्गति को उपर्युक्त पंक्तियों में रूपायित किया गया है।

'भेख धारण', स्थूल कर्मकाण्ड तथा विविध मूढ विश्वासों की कलई वे इन शब्दों के माध्यम से खोलते हैं:-

जोगी संनिआसी हैं जेते।
मुडीआ, मुसलमान गन केते।
भेख धरे लूटत संसारा।

वे आगे लिखते हैं:-

कान छेदि जोगी कहवायो।
अति प्रपंच करि बनहि सिधायो।
बन को भयो न ग्रिह को भयो।

स्पष्ट है कि गुरु जी एक ऐसे समाज की संरचना का उपक्रम कर रहे थे, जिस समाज में द्वैत मूलक भेद भाव पर आधारित भ्रमजाल को सर्वथा निरस्त कर एक जागरुक मानव (खालसा) की प्रभुता को प्रतिष्ठित किया जा सके।

अवतार संबंधी अपने इस स्पष्टीकरण के पश्चात् गुरु जी कथा का पिछला सूत्र फिर थाम लेते हैं। सर्व प्रथम वे श्री काल के तेजस्वी रूप 'भवानी' को इस सृष्टि का कर्त्तृत्व सौंपते हैं:-

---

1. मढ़ी/मठ से विकसित। मुर्दों की समाधियाँ। 2. कब्र 3. इस्लामी जप-माला 4. विरोध/लड़ाई-झगड़े।

प्रथम काल सभ जग को ताता।
जाते भयो तेज बिख्याता।
सोई भवानी नाम कहाई।
जिन सिगरी यह स्रिसटि उपाइ।
प्रिथमे ओअंकार तिन कहा।
सो धुन पूर जगत में रहा।
ताते जगत भयो बिसथारा।
पुरुख, प्रक्रिति जब दुहुं बिचारा।

पुरूष और प्रकृति के संयोग से जगत् का विकास हुआ। दृश्यमान जगत् मूलतः एक ही तत्व से सम्बद्ध हैं:-

जितिक जगती के जीव बखाने।
एक जोत सभ ही महि जाने।

अपनी इस केन्द्रीय दृष्टि के साथ गुरु जी अवतार कथाओं का उपक्रम करते हैं। प्रत्येक अवतार से पूर्व किसी एक आसुरी शक्ति के उदय तथा अंततः उसके क्रूर कृत्यों के फलस्वरूप उसका सर्वथा ध्वंस, निरपवाद रूप से बताया गया है।

इस पद्धति पर २४ अवतारों की पौराणिक गाथाएं श्री दशम ग्रंथ में उपलब्ध हैं। कुछ पौराणिक-इतिहासिक व्यक्तियों को भी गुरु जी ने संभवतः पहली बार -पदोन्नति देकर अवतार कोटि में रखा है। इस कोटि में ये नाम उल्लेखनीय हैं:-

जलंधर, मनु, धनंतर (धन्वंतरि), चंद (चन्द्रमा) अरहंत आदि।

उप-अवतार

श्री दशम ग्रंथ में रूद्र के दो उप-अवतार (दत्तात्रेय और पारस नाथ) बताए गए हैं। इसी प्रकार ब्रह्मा[1] के ये सात उप अवतार बताए गए हैं: बालमीकि, कस्यप, सुक्राचार्य वाचेस (वाचस्पति : वृहस्पति), बिआस, 'षट् सासत्र कार रिखी' और कालिदास।

उप-अवतार का यह संकल्प श्री दशम ग्रंथ के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं मिलता। स्पष्ट है कि पारंपरिक अवतार गाथाओं में कुछ महनीय प्रतिभाओं

---

1. ब्रह्मा भी विष्णु के अवतार बताए गए हैं:- *'जब जब बेद नास होइ जाही, तब तब पुन ब्रहमा प्रगटाही। ताते बिसन ब्रहम बपु धरा, तब सभ बेद प्रचुर जग करा।'* साथ ही यह भी कहा है:- *ब्रहम, बिसन महि भेदु न लहीऐ, सासत्र, सिंम्रिति इम कहीऐ।'*

अथवा ३ लोक प्रसिद्ध शूर-वीरों को सम्मान प्रतिष्ठित किया गया है। अवतार गाथाओं का यह अपेक्षित विस्तार दशम ग्रंथ की एक उपलब्धि कही जा सकती है।

अवतार : दो वर्ग

दशम ग्रंथ की अवतार कथाओं के आधार पर इन कथाओं के अवतारी चरित्रों को- मात्र सुविधा के लिए-इन दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:-

(1) शस्त्रधारी तथा (2) शास्त्रधारी।

जिन अवतारी व्यक्तियों ने आसुरी शक्तियों का दमन अपने भुज-बल तथा शस्त्र कौशल से किया, उन्हें शस्त्रधारी वर्ग में रखा जा सकता है।

इसके विपरीत समाज में मानसिक कलुषता तथा लोगों में भ्रमजाल, दम्भ, पाखंड, अनाचार आदि कुत्सित भावनाओं का प्रचार प्रसार करने वाले कलुषित व्यक्तियों को बौद्धिकता, शास्त्रीयता तथा सदाचार के बल पर परास्त करते वाले अवतारी व्यक्तियों को शास्त्रधारी कहा जा सकता है।

मीर महदी

संभवतः दशम ग्रंथ ही हमारी एक मात्र ऐसी रचना है जिसमें इस्लाम के एक भावी पैगंबर मीर महदी को भी अवतारी व्यक्ति के रुप में चित्रित किया गया है। जगद् विजयी मीर महदी के गर्वको चूर-चूर किया भगवत् प्रेरणा से एक तुच्छ कीड़े ने। इसी कीड़े के काटने से मीर महदी मर गए।

सर्वप्रथम विष्णु 'मछछ' (मत्स्य) रुप में अवतरित हुए। इस अवतार का मुख्य उद्देश्य 'संखासुर दानव' का संहार करना था:-

संखासुर दानव पुन भयो।
बहु बिध कै जग को दुख दयो।

तब विष्णु नेः

प्रथमे तुछ्छ मीन बपु धरा।
पैठ समुंद्र झकझोरन करा।

अंततः घोर संग्राम हुआ और उस में हुआ शंखासुर का काम तमामः-

कीयो उध्धार बेदं, हते संखबीरं,
.......कीयो दुसट नासं।

शंखासुर के पश्चात् आसुरी शक्तियां फिर प्रबल हुईं और विष्णु को 'कछ्छ' (कच्छप) रूप में अवतरित होना पड़ा। इसी प्रसंग में 'समुद्र मंथन' तथा 'मोहनी' अवतार की कथा भी दी गई है। इसी क्रम में बराह, नरसिंघ, वामन 'परस राम' आदि अवतारों की कथाएं दी गई हैं।

इन सभी पौराणिक कथाओं की संरचना लगभग समान रूपा है। पृष्ठभूमि में सर्वत्र आसुरी शक्तियां हैं और उनके साथ वैष्णवी अवतारों का सशस्त्र संघर्ष होता है। अंततः विजय सत् पक्ष की होती है और असत् पक्ष को ध्वस्त कर बार-बार धर्म तथा न्याय की विजय दिखाई जाती है। चूंकि दो पक्षों का यह सशस्त्र संघर्ष वीर रस के परिपाक हेतु एक आदर्श परिदृश्य प्रस्तुत करता है' फलतः वीर रस की उत्तेजक तथा उत्साह वर्धक सृष्टि कहीं भी देखी जा सकती है।

अध्याय-९
शस्त्रधारी अवतार

राम

राम को विष्णु का बीसवां अवतार बताया गया है। इस अवतार की पृष्ठ भूमि में भी आसुरी शक्तियों का उपद्रव है। इस उपद्रव के निवारण हेतु देव-गण क्षीर सागर में ब्रह्मा-विष्णु के पास जाते हैं:-

असुर लगे बहु करे विषादा।
किनहूं न तिनै तनक मै साधा।
सकल देव इकठे तब भए।
छीर समुंद्र जह थै तिह गए।

देवताओं की प्रार्थना सुन कर 'काल पुरूष' ने विष्णु को आदेश दिया:-

म्रिद हास करी, कर काल धुनं।
अवतार धरो रघुनाथ हरं।
चिर राज करो सुख सो अवधं।

राम जन्म

कौशल्या[1] के गर्भ से राम का जन्म हुआ :

रावणारि प्रगट भए जग आन राम अवतार।

इसी प्रकार राम-कथा के अन्य सूत्र (राक्षस-वध सीता स्वयंवर आदि) भी पर्याप्त विस्तार के साथ श्री दशम ग्रंथ में उपलब्ध हैं। सुबाहु-मरीच वध प्रसंग की ये पंक्तियां दृष्टव्य हैं:-

बजे घोर बाजे। धुणं मेघ लाजे।
कड़क्कं कमाणं। झडक्कं क्रिपाणं।

अंततः दैत्य वध तथा धर्म-स्थापना:-

भुअ मार उतार्यो, रिखीसं उबार्यो, गए पाप दूरं सुरं सरब हरखे।

1.कौशल्या को 'कुहडाम शहर' के राजा की पुत्री बताया गया है : *'कुहड़ाम जहां सुनीऐ सहरं। तहं कौसल राज न्रिपेस बरं। उपजी तह धाम सुता कुसलं...।*

इसी पद्धति को युद्ध-वर्णन में प्रायः सर्वत्र अपनाया गया है। राम वन-वास के प्रसंग में लक्ष्मण के मुख से कैकेयी की भर्त्सना के ये शब्द कहलवाए गए है :-

काम के डंड लिए कर केकई, बानर जिउ न्रिप नाच नचावै
.... सुआ जिम पाठ पढावै,
.... चाम के दाम चलावै,
.... लोक गए परलोक गवावै।

इसी प्रसंग में:

सुमित्रा वाच॥ लछमन सो।

दास को भाव धरे रहियो सुत, मात सरूप सिआ पहिचानो।
तात की तुल्ल सिआ पति करिकै, इह बात सही करि मानो।
जेतक कानन के दुख हैं सभ सो सुख कै,[1] तन पै अनुमानो।
राम के पाइ गहे रहिओ, बन कै घर[2] को, घर कै बन जानो[3]।

इत्यादि पंक्तियां बहुत मार्मिक हैं।

राम वन वास की अन्य प्रमुख घटनाएं (सूपनखा को नाक काटबो, 'खर दूषू दईत बधह' 'सीता हरण', 'बालि बधह', 'इंद्र जीत बधह', 'दस सिर बधह', 'बभीछन को लंका को राज दीबो', 'अजुधिआ आगम', आदि बहुत रोचक हैं और पाठक पर गंभीर प्रभाव छोड़ जाती हैं। 'सीता को बनबास दीबो' शीर्षक के अन्तर्गत राम द्वारा सीता को निर्वासित करने की घटना का मात्र संकेत दिया गया है:

दिओ राम संगं सुमित्रा कुमारं,
दई जानकी संग
जहां घोर सालं[4], तमालं बिकरालं।
तहां सीअ को छोर आयो उतालं।
बनं निरजनं देख कै कै अपारं,
बनं बास् जान्यो दयो रावणारं[5]।

इस राम कथा की कुछ घटनाएं परम्परा से हट कर भी चित्रित की गई हैं। राम अयोध्या में अश्वमेध यज्ञ का आयोजन करते हैं। वाल्मीकि के आश्रम में पल रहे लव और कुश इस यज्ञ के घोड़े को पकड़ लेते हैं। युद्ध होता

---

1. सुख समझकर 2. बन को घर 3. घर को बन समान समझना। 4. 'शाल' वृक्ष 5. रावण के अरि (राम) ने वनवास दे दिया है, यह पता चला सीता को।

है और इस युद्ध में लक्ष्मण मारे जाते हैं:-

लछन वीरं, इकै बाणं, हण्यो भालं, गिर्यो तालं।

इस घटनाक्रम को सुखांत मोड़ दिया गया है, 'सिता ने सभ जीवाए कथनं (अध्याय) के साथ।

इसी प्रकार 'सीता दुहु पुत्रन सहित पुरी अवध प्रवेस कथन' में पारंम्परिक कथा के दुःखांत को एक नया मोड़ दिया गया है। अंत में राम, भरत, लक्ष्मण, सीता तथा अन्य रानियों ने अपने-अपने ढंग से अपना-अपना शरीर त्याग किया :-

राम कथा जुग जुग अटल, सभ कोई भाखत नेत[1]।
सुरग बास रघुवर करा, सगरी पुरी समेत।

कथा समाप्त करते हुए गुरु जी गुरू-घर-सम्मत अपनी निर्गुणवादी दृष्टि को फिर से प्रस्तुत करना नहीं भूलेः-

पाइ गहे जब ते तुमरे तब ते कोऊ आंख तरे नहीं आनयो।
राम, रहीम, पुरान, कुरान, अनेक कहैं, मत एक न मानयो।
सिंम्रिति सास्त्र बेद सभै बहु भेद कहै, हम एक न मानयो।
स्त्री असिपान[2] क्रिपा तुमरी कहि, मैं न कह्यो सब तोहि बखानयो।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि राम कथा गायकों की एक लंबी परम्परा में श्री दशम ग्रंथ का राम-काव्य भाषा, भावना, अलंकरण तथा रूचिर काव्य की दृष्टि से तो पर्याप्त मूल्यवान् है ही, इसके साथ राम-कथा के माध्यम से अपने युग को सम सामयिक दानवी अत्याचारों-अनाचारों के विरूद्ध सशस्त्र संघर्ष के लिए सन्नद्ध करने तथा आत्म बलिदान की अमिट प्रेरणा देने का श्रेय केवल दशम गुरु जी को ही दिया जा सकता है।

कृष्ण-अवतार

'अथ क्रिसना अवतार इकीसमो अवतार कथनं' इस शीर्षक के साथ कृष्णावतार की कथा की गई है। इस अवतार की पृष्ठभूमि में दैत्य शक्तियों के अत्याचारों और पृथ्वी का 'डगमगाते' कदमों के साथ ब्रह्मा के पास जाना, ब्रह्मा का क्षीर सागर में 'अकाल पुरूष' के समक्ष उपस्थित होना और 'अकाल पुरूष' का विष्णु को कृष्ण-अवतार धारण करने की आज्ञा देना आदि घटनाएं दी गई हैं:-

---

1. 'नेति, नेति' 2. असिपाणि। खड्गधारी। अकाल पुरूष।

'अथ प्रिथमी ब्रहमा पहिं पुकारत भई :

स्वैया :

दईतन[1] के भर ते, डर ते, जु भई प्रिथमी बहु भारहि भारी।
गाइ[2] के रूप तबै धर कै ब्रहमा रिख पै चल जाइ पुकारी।
ता छवि की अति ही उपमा कब ने मनभीतर यौं गनीआ[3]।
जिम लूटे ते अग्रज चउधरी के कुटवार[4] पै कूकत है बनिआ।

किसी लुटे पिटे बनिये (बाणिक्) का कोतवाल के पास जाकर घिघियाना-रिरियाना जैसा बिंब विधान इन पंक्तियों को नव अर्थमत्ता तथा अद्‌भुत सौंदर्य प्रदान करता है।

वसुदेव-देवकी विवाह,

कंस का इस दम्पति को कारागार में डालना, इनके 6 पुत्रों को क्रमशः मार डालना तथा सातवीं सन्तान (कन्या) की हत्या का प्रयास करना आदि वीभत्स (करूण) प्रसंग भी यहां वर्णित हैं। कन्या का कंस के हाथों से छूट कर आकाश में बिजली की भांति कौंधना एक बहुत मार्मिक दृश्य हैः-

दामन[5] हवै लहकी नभ में, जब हाथ लई, वह राखन हारो।

नंद के घर में श्री कृष्ण की बाल लीलाओं का विस्तृत विवरण दिया गया है। पूतना वध, तृणावर्त वध जैसी घटनाओं के साथ-साथ 'गोपन सो खेलबो, 'माखन चोरि खैबो', 'विस्व रूप दिखैबो', 'गोबरधन गिरि कर पर धारबो', रास[6] लीला', कंस वध', आदि भागवत-प्रसिद्ध कथाएं दी गई हैं।

'गाइत्री मुत्र सिखाइ जग्योयवीत डारा गरे', 'धनुष विद्यिआ सीषन' 'गोवी ऊधव संबादे बिरह बरणनं', उग्रसेनरातज दीबो' 'जुध प्रबंधे पांच भूप दो अछूहनी[7] दल बधह', 'दस भूप जुध कथन, 'कालिनाग बध' तथा गोबरधन'पर्वत धारण' आदि प्रसंग पर्याप्त रोचक बन पड़े हैं।

इनके अतिरिक्त श्री कृष्ण का सोलह हज़ार राज-कन्याओं से विवाह का वर्णन कृष्ण चरित की परम्पराओं के अनुसार हैः-

'सौलह सहंसर राज-सुता विआह कथनं'

सोलह सहंसर भूपन की दुहिता थी जहां तिह ठउरहि आयो।
सुंदर हेर कै स्याम जू कउ तिन त्रीअन को अति चित्त लुभायो।
या लखि पाइ विवाह सभै करि ......जसु डंक बजायो।

---

1. दैत्य 2. गाय 3. विचार किया 4. कोतवाल 5. दामिनी : बिजली 6. 'रास' का एक चित्रः 'एक नचे, इक गावत गीत बजावत ताल दिखावत भावन, रास विषे अति ही रस, सु रिझावन काज सभै मन भावन। 7. 'अक्षौहिणी' सेना।

श्री दशम ग्रंथ में महाभारत के थोड़े से प्रसंग ही लिए गए हैं। 'लाक्षागृह प्रवेश',- और युधिष्ठिर का राजसूर्य यज्ञ इनमें मुख्य हैं। राज सूर्य यज्ञ की प्रतिक्रिया कौरवों के दल पर बहुत बुरी हुईः

जग्ग निहारि जुधिसटरि को, मन भीतर कउरन कोप बसायो।
पंड[8] के पुत्रन जग्ग कीयो, तिह ते इनको जग में जसु छायो।

चूंकि श्री दशम ग्रंथ की मूल भावना 'धर्मयुद्ध' से अनुप्राणित है, इसलिए इसमें श्री कृष्ण के बल-पराक्रम तथ असुर संहार के प्रसंगों को वरीयता दी गई है। वरीयता के इस क्रम में श्रीमद् भगवद्गीता भी कहीं पिछड़ गई प्रतीत होती है।

श्री कृष्ण अवतार कथा के अंत में गुरु जी अपनी क्षत्रिय-ऊर्जा को रोखांकित करते हुए लिखते हैंः

छत्री को पूत हौं, बामन को नाही, कै तपु आवत है जु करौं।
अरु अउर जंजार जिते ग्रिह के, तुहि तिआगि,कहा चित ता में धरौं।
उब रीझ कै देहु वहै हम कउ, जोऊ हउं बिनती कर जोरि करौं।
जब आउ की अउध निदान बनै, अतिहि रन मैं तब जूझ मरौं।

अपनी कृष्ण कथा का स्रोत वे श्रीमद् भागवत को स्वीकार करते हैंः-

दसम[2] कथा भागौत की भाषा करी बनाइ।
अवर बासना नाहि प्रभ, धरम जुध्ध के चाइ।

श्री दशम ग्रंथ की कृष्ण-कथा के साथ गुरु जी का एक ऐतिहासिक संयोग भी दृष्टिगोचर होता है। श्री कृष्ण ने अपनी लीलाओं के लिए यमुना नदी तथा उसके निकटवर्ती प्रदेश को चुना। दशम गुरु जी ने श्री कृष्ण की लीला गायन के लिए भी यमुना नदी के निकट 'पांवटा' (सिरमौरः हिमाचल प्रदेश) नगर को ही चुना। वे लिखते हैंः-

सत्रह सौ पैताल[3] महि सावन सुदि थिति दीप।
नगर पांवटा सुभ करन जमना बहै समीप।

यमुना को इन दोनों महापुरूषों ने एक दिव्य आत्मा प्रदान की है, इसमें सन्देह नहीं।

दशम गुरु जी 'धर्म-युद्ध' की अपनी भावना को भी कृष्णा लीला के अंतिम पद्य में इस प्रकार रुपायित करते हैंः-

---

1. पांडु के पुत्र 2. दशम स्कन्ध। श्रीमद् भागवत। 3. संवत् 1745

धंन जीओ तिह को जग मैं, मुख तै हरि चित्त मैं जुध्धु बिचारै।
देह अनित्त, न नित्त रहे जसु नाव चढ़ै भवसागर तारै।
धीरज धाम बनाइ इहै तन, बुध्धि सुदीपक जिउ उजियारै।
गिआनहि की बढनी[1] मनहु हाथ लै कातरता कुतवार[2] बुहारै।

ज्ञान की झाड़ू से कायरता के कचरे को दूर करने की प्रेरणा दशम गुरु जी ही दे सकते थे। ज्ञान, भक्ति तथा शौर्य की इतनी गम्भीर तथा व्यापक अन्विति गुरु जी को भारतीय इतिहास में अमित गरिमा प्रदान करती है।

श्री कृष्ण के चरित गायकों ने उनके श्रृंगारी अथवा कोमल पक्ष को ही प्रायः छुआ है, फलतः उनके जीवन का ओजस्वी रुप प्रायः अनछुआ अन कहा ही रह गया है। दशम गुरु जी ने धर्म, इतिहास तथा साहित्य की गरिमा को यथावत् सुरक्षित रखते हुए तथा 'धर्म संस्थापना के प्रति श्री कृष्ण की अपनी प्रतिबद्धता का सम्मान करते हुए इस महान चरित्र के शौर्य की महनीय उपलब्धियों को संभवतः सर्वप्रथम विवृत किया है। श्री कृष्ण चरित गायकों की परम्परा में गुरु जी का यह योगदान अप्रतिम कहा जा सकता है।

'कल्की' (निष्कलंक : निहकलंक) अवतार

शस्त्रधारी अवतारों में अंतिम (24वें) अवतार हैं कल्की। ये भावी अवतार हैं। इनकी पृष्ठभूमिं में भी आसुरी अत्याचार, सामाजिक अनाचार तथा 'धर्म-ग्लानि' की विकट स्थितियां विद्यमान होंगीः-

जहं तहं बढ़ा पाप का करम। जग ते घटा धरम का भरम।
पाप प्रचुर जहं तहं जग भइओ। पंखन धारि धरम उडि गइओ।

इन विकट स्थितियों का निवारण करने के लिएः-

कलजुग के अंतह समै, सतिजुग लागत आदि।
दीनन की रछ्छा लीए, धरिहैं रुप अनादि।

श्री दशम ग्रंथ की भविष्य वाणी हैः-

पाप संबूह बिनासन कउ कल्की अवतार कहावहिंगे
...काढ़ि क्रिपान खपावहिंगे।
...भल भाग भया इह संभल को हरिजू हर मंदिर आवहिंगे।

इस अवतार का यह शस्त्रधारी रूप द्रष्टव्य हैः-

1. झाड़ू : महान कोश, तुलनीय : बहुकरी (संस्कृत), बौहकर (पंजाबी) झाड़ू 2. कूड़ा-करकट : महान कोश

दानव मारि अपार बड़े रणि, जीत निसान बजावहिंगे।
भवभार अपार निवारन को कलकी अवतार कहावहिंगे।

कल्की अपने युग के संभल[1] नरेश को उसके कुशासन और दुराचरण के कारण तलवार के घाट उतारेंगे:-

संभर नरेस मारिओ निदान, जग धूप दीप जग्गि आद दान का सिलसिला शुरू होगा।

'संभल' नरेश को मार कर कल्की चारों दिशाओं में धर्म स्थापना करेंगे। दक्षिण में तैलंग', 'द्रविड' 'बइदरभी' (विदर्भ-वासी) लोगों को जीत कर कल्की पूर्व दिशा की ओर प्रस्थान करेंगे।

दिग्विजय कर कल्की घमंड़ के शिकार होंगे:-

जग जीतिओ जब सरब। तब बाढिओ गरब।
दीआ काल पुरुष बिसार। इह भांत कीन बिचार।
बिन मोहि दूसर न और आपन जपायों नाम।

कल्की का गर्व चूर-चूर करने के लिए अकाल पुरूष ने

'तब काल देव रिसाइ। इक अउर पुरुख बनाइ।
रचिअस महिंदी मीर। तिन तउन को बध कीन।

अंततः समस्त चराचर को 'काल अधीन' कह कर कल्की कथा की समाप्ति हो जाती है।

---

1. संभल (संभर) नगर। जिला मुरादाबाद। कल्की अवतार यहीं होंगे।

अध्याय- १०

शास्त्रधारी अवतार

अपनी बौद्धिकता, अपनी शास्त्र निष्ठता तथा अपनी सदाचार परायणता के बल पर अवतार पद अर्जित करने वाले व्यक्तियों में से कुछ ये हैं:- अरहंत देव, बउध (बुद्ध), बाल्मीकि तथा धन्वतरि वैद्य अदि।

अरहंत[1] देव :

विष्णु के चौदहवें अवतार हैं, अरहंत देव। विष्णु 'अकाल पुरूष' की आज्ञा पाकर अरहंत रूप में अवतरित हुए:-

अकाल पुरूख तब भए दइआला।
दास जानि कह बचन रसाला।
धर अरहंत देव को रूपा।
नास करो असुरन को भूपा।

भूमंडल पर अवतरित होकर अरहंत ने 'स्रावग' मत की स्थापना की। असुरों को कुमार्ग पर लगाया[2]:-

सिखा हीण दानव बहु कीए,......
सिखा हीण कोइ मंत्र न फुरे।
जो कोई जपै, उलटि तिह परै।

अरहंत ने अहिंसा का उपदेश दिया:-

जीअ हिंसा ते सबहु हटायो, ...
बिन हिंसा कीअ जग्ग न होइ।
ता ते जग्ग करै न कोइ।

इस प्रकार अरहंत देव ने:-

अपंथ पंथ सभ लोगन लाया।
धरम करम कोउ करन न पाया।

---

1. 'अर्ह' (योग्य) से निष्पन्न। जैन तीर्थकर। 2. ब्राह्मणवादी पौराणिक दृष्टि के कारण इस प्रकार का दुष्प्रचार जैन-मत के विरूद्ध किया गया था। पर इसे जन समर्थन नहीं मिला।

निरीश्वरवादी : दृष्टि

जैन धर्म की निरीश्वर वादी दृष्टि को श्री दशम ग्रंथ में इस प्रकार रूपायित किया गया है:-

अन्न अन्न ते होत ज्यों, घास-घास ते होइ।
तैसे मनुख-मनुख ते, अवरु न करता कोइ।

अहिंसा तथा निरीश्वरवादी दृष्टि जैन मत के मूल सिद्धान्त हैं। इन्हें केन्द्र में रख कर-पौराणिक शैली में-अर्हत (जैन मत) का संक्षिप्त सा परिचय श्री दशम ग्रंथ में मिलता है।[1]

बुद्ध अवतार[2]

अथ बउध अवतार तेईसवे कथनं।
अब मैं गनो बउध अवतारा।
जैस रूप कह धरा मुरारा।

बुद्ध के संबंध में मात्र इतना ही कहा गया है:

बउध अवतार इही को नाउ।
जाकर नांव ना थांव न गांऊ।

संभवतः बुद्ध के शून्यवाद को लक्षित कर ये पंक्तियां लिखी गई हैं:-

जाकर नाव न ठाव बखाना।
बउध अवतार वही पहचाना।

बुद्ध की प्रस्तर मूर्तियों को लक्षित कर कहा गया है:-

सिला रूप बरनत जगत सो बउध अवतार।

बालमीक

वाल्मीकि को ब्रह्मा का पहला (उप) अवतार बताया गया है। उनकी राम कथा सात कांडों में सम्पूर्ण हुई और इसे पर्याप्त सम्मान मिला आदि तथ्यों की ओर संकेत किया गया है।

निष्कर्ष यह कि कतिपय शास्त्रधारी बौद्धिक, सर्जक तथा जागरुक व्यक्तियों की दृष्टि तथा उनकी सृष्टि का सम्मान करते हुए गुरु जी ने उन्हें 'उप-अवतार' कोटि में रखा है।

---

1. आदि गुरू जी ने जैन धर्म के संबंध में कहा है : 'जैन मारग संजम अति साधन' (सुखमनी) इतना प्रामाणिक उल्लेख पंजाब में अन्पत्र दुर्लभ है। 2. मिहरिवानु में 'बउध' अवतार के संबंध में लिखा तो विस्तार से है। परन्तु उसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। 42 बुद्धों का उल्लेख तो बहुत भ्रांतिपूर्ण है। विस्तार के लिए देखिए : गोसटि गुरू मिहरिवानु : संपादक, डॉ. राजगुरू।

धनंतर बैद

अथ धनंतर बैद अवतार कथनं।

इस उल्लेख के साथ आयुर्वेद शास्त्रधारी धन्वंतरि का संक्षिप्त परिचय दिया गया है।

विष्णु के इस उप अवतार की पृष्ठभूमि में रोग-आक्रान्त जनता का दुःख दर्द है:-

धनवंत भए जग लोका,
भछ्छत पकवाना, ...भांत भांत
उपजत रोग देह तिन नाना

अधिक भोजन से अधिक रोगों के आक्रमण लोगों पर होने लगे। तब 'परम पुरूष' (अकाल पुरूष) ने विष्णु को धन्वंतरि के रूप में अवतरित होने के लिए कहा:-

आयुर्वेद को करो प्रकास्।
रोग प्रजा को करीयहु नासा।

देवताओं ने एकत्रित होकर समुद्र मंथन किया और वहां से :-

रोग बिनासन प्रजा हित, कढयो धनंतर राइ।

गुरु जी लिखते हैं:-

आयुर बेद तिन कीयो प्रकासा।
जग के रोग करे सभ नासा।

धन्वंतरि वैद्य की त्रासदी यह रही कि सर्प-दंश के कारण उन्हें अपनी जान गंवानी पड़ी:-

काल पाइ तछ्छक[1] हन्यो, सुर पुर कियो पयान।

धन्वंतरि का यह अवदान अविस्मरणीय है।

इन अवतारों उप अवतारों के अतिरिक्त सूर्य, चन्द्र को भी अवतार कोटि में रखा गया है। गीता में निर्दिष्ट प्रत्येक विभूतिमान् 'सत्व' को भगवदंश स्वीकार करते हुए गुरु जी ने प्रत्येक विचार, दृष्टि, तथा पद्धति मूलक भेद भाव को नकारते हुए मानवता के योग्य प्रतिनिधियों को अवतार पद पर प्रतिष्ठित किया है।

---

1. तक्षक नाग।

इतना ही नहीं, पुराण-इतिहास ग्रंथों के प्रसिद्ध सम्राटों 'प्रियू राजा', 'बेण राजा', सम्राट 'मानधाता' 'दलीपराजा, 'रघु राजा' और 'अज राजा' को भी पुण्य स्मरण किया गया है। इस प्रकार भारत की महनीय मनीषा, उदात्त बीरता तथा अप्रतिम जन सेवा के प्रति समग्रतः समर्पित व्यक्तियों को श्री दशम ग्रंथ की प्रशस्ति दीर्घा में सादर स्थान दिया गया है। निश्चय ही इस कोटि का साहित्यिक अवदान मानवीय इतिहास में नितांत दुर्लभ है।

अध्याय-११

गिआन प्रबोध ग्रंथ

इस रचना का प्रारंभिक अवतरण इस प्रकार है:-

एक ओंकार। सतिगुर प्रसादि।'
'स्री भगउती जी सहाइ'
'अथ गिआन प्रबोध ग्रंथ लिख्यते'।
'पातसाही १० .....त्व प्रसादि'।

प्रतिपाद्य

प्रतिपाद्य की दृष्टि से यह रचना बहुत उपादेय प्रतीत होती है। इसके प्रारम्भ में निर्गुण ब्रह्म (अकाल-पुरूष) की (गुरु-घर-सम्मत दृष्टि से) स्तुति की गई है (पद्य १-१२५)।

संवाद

प्रश्नोत्तर

इसके पश्चात 'आतमा राम' (जीवात्मा) तथा परमात्मा का संवाद दिया गया है:-

दिन अजब एक आत्मा राम,
अनभउ सरुप अनहद अकाम।

इस 'आत्मा राम' को 'अजान बाहू' (आजानु बाहु), 'राजान राज' (राजाओं का राजा: राज राजेश्वर) 'साहान साहु' (शाहों का शाह: शहन शाह) आदि अनेक विशेषणों से विभूषित किया गया है। उसे 'उतभुज[1] सरूप', 'अबिगत[2] अभंग' तथा 'अन्तिम तेजि' बताया गया है। 'आतमाराम' ने अपने ही स्वरूप के संबंध में यह जिज्ञासा की :-

'इह कउन आहि आतमा सरूप ....
जिह अन्तिम तेजि अतिभूति विभूति'

---

1. 'उद्‌भिज्ज' ज़मीन फोड़ कर उगने वाली वनस्पति। सृष्टि के चार प्रमुख वर्ग : ***'अंडज जेरज सेतज कीनी, उतभुज खानि बहुररचदीनी'*** *(बेनती चौपई)* 2. अव्यक्त।

इस प्रश्न के उत्तर में:-

'परमातमा बाच[1] ॥

यहि ब्रह्म आहि आतमा राम,
...जिह भेद भरम नहीं करम काल।
...डोबियो न डूबे, सोषियो न जाइ[2],
कट्टियो न कटै, न बारियो[3] बहाइ।
...जिह सत्र मित्र नहीं जात पात'।

आत्मा-परमात्मा के अद्वैत की यह स्वीकृति निर्गुणवाद की चरम उपलब्धि कही जा सकती है।

दूसरा प्रश्न

यहि चतुर वरग संसार दान।
किहु चतुर वरग, कीजै बखियान।
...सो आतमाह परमातमा पुछंत।

इस चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की विशद विवृति परमात्मा ने की है। धर्म को 'दान' के रुप में प्रस्तुत करते हुए परमात्मा ने पुरातन राजाओं-भरत, युधिष्ठिर आदि-के यज्ञ- याग का विस्तृत विवरण दिया है।

युधिष्ठिर के राजसूर्य यज्ञ, परीक्षित के गजामेध[4], बाजामेध[5], जनमेजय के 'सर्पमेध' के साथ-साथ 'पसु मेध' का भी उल्लेख किया गया है। इस प्रकार पांच राजाओं के जीव-हिंसा-प्रचुर यज्ञों का विवरण इस रचना में उपलब्ध है।

अन्त में लिखा है, ***अथ पंचमो राज समापतमसतु सुभम सतु***। 'अथ' के साथ ग्रंथ समाप्ति सूचक यह वाक्य लिपिक के अज्ञान तथा उसकी अनवधानता की ही सुचना देता है।

ज्ञान सम्भार

अपने नाम (गिआन-प्रबोध) के अनुरुप इस रचना में भारतीय तत्व चिंतन-विशेषतः अद्वैत दृष्टि का विशद विवरण उपलब्ध है। **ब्रह्म** (अकाल पुरूष) के अद्वैत रुप की यह प्रस्तुति सचमुच मौलिक है:-

बेद भेद नहीं लखै, ब्रहम ब्रहमा नहीं बूझै।
बिआस, परासर, सुक, सनादि, सिव अंत न सूझै।

---

1. 'उवाच' का लोक रूप 'वाच' या 'बाच' प्रचलित रहा है। 'कबि बाच' भी मिलता है।
2. 'न चैनं' क्लेदयन्त्याप : न शोषयति मारूतः (गीता) का छायानुवाद। 3. जल। 4. हाथी की बलि 5. आश्वमेध : असमेधे

...लख लखमी, लख बिसन किसन कई नेत[1] बतावहिं,
...अचुत, अनंत, अद्वै, अमित नाथ निरंजन तुव सरण।

अद्वैत दृष्टि के प्रतिकूल प्रत्येक भ्रम-जाल का निराकरण इस प्रकार किया गया है :-

अलेख, अभेख, अद्वैख, अरेख, असेख, को पछाणीए,
न भूल जंत्र, मंत्र तंत्र भरम भेख ठानीए।

इसके अतिरिक्त ***'खैर खूबी को दिहंदा'***[2], ***दोख दुर्जन दलिंदा***[3], और ***कालिख कटिंदा***[4], जैसे भाषा (फारसी) सांकर्य के विशेषणों के साथ भी उसी ब्रह्म की प्रतिष्ठा की गई है। 'गिआन प्रबोध' में एक स्थान पर तत्कालीन शिक्षण-पद्धति और पाठ्य पुस्तकों का विस्तृत विवरण उपलब्ध है। ज्ञानार्जन के संदर्भ में 'गिआन प्रबोध' का यह अवतरण द्रष्टव्य है:-

कहूं बेद सिआम[5] सुरं साथ गावै,
कहूं जुजर[6] बेद पढ़ै, मान पावै।
कहूं रिग[7] बांचै, महा अरथ बेदं[8],
...कहूं असट द्वै[9] अवतार कथे कथाणं,
...कहूं कोकसारं[10], पढै नीत धरमं,
कहूं ब्रह्म बिदिआ, पढै व्योम बानी[11]।
कहूं प्राक्रितं, नाग[12] भाखा उचारहि,
कहूं सहसक्रित व्योमबानी बिचारहि,
कहूं सासत्र संगीत मै गीत गावै,
कहूं जछ्छ गंध्रब बिदिआ बतावै'।

दर्शन शास्त्र के अध्ययन-अध्यापन की यह झांकी भी बहुत प्रामाणिक है:-

कहूं निआइ[13], मीमांसका, तरक सासत्रं,
...बेद पातंजले सेख[14] कहानं।
...चउदाह बिदिआ निधानं'।

पाठ्य-पुस्तकों का यह विवरण भी बहुत प्रामाणिक है :-

कहूं भाख[1] बाचै, कहूं कौमबीअं[2],
कहूं सिध्धका[3], चंद्रिका[4] सारसुतीयं,

---

1. नेति, नेति 2. देने वाले (फारसी) 3. दलन करने वाले। संस्कृत फारसी-संकर 4. काटने वाले। संकर प्रयोग 5. सामवेद 6. यजुर्वेद 7. ऋटंग्वेद 8. अथर्व वेद 9. 8+2=10 अवतार 10. कोक शास्त्र 11. देव वाणी : संस्कृत 12. नाग वंश के लोगों की बोली। प्राकृतों का एक भेद 13. न्याय दर्शन 14. शेष नाग के अवतार : पंतजलि : का योग दर्शन।

कहूं बिआकरण कौसिकालाप[5] कथै,
कहूं प्राक्रिआ[6], कासिका[7] सरब मथै,
कहूं बैठि मानोरमा[8] ग्रंथ बाचै।
...कहूं बैठि कै गारडी[9] ग्रंथ बाचै,
...कहूं परम पौरान[10], कथे कतेबं[11],
...कहूं जामनी[12], तोरकी[13] कहूं पारसी।

गिआन प्रबोध का अंत 'दैत मेध' के साथ होता है। अंत में यह शुभ कामना की गई है:-

जैस सुर सुख पाइउ, तिव संत होहु सहाइ।

और 'इति सुभं' के साथ रचता समाप्त हो जाती है।

दुर्भाग्य से इस रचना का अभी तक कोई खास नोटिस नहीं लिया गया। कई प्रकार के आग्रहों, दुराग्रहों तथा पूर्वाग्रहों के कारण इस रचना का विधिवत् मूल्यांकन नहीं किया जा सका। लिपिकों, सम्पादकों और मुद्रकों ने इसके कई स्थल तथा शब्द नितांत दुर्बोध बना दिए हैं। कई स्थानों पर पाठ केवल 'अपपाठ' बन कर रह गया है। इस रचना का मूल्यांकन करते समय इस विकट समस्या से प्रत्येक पाठक आतोचक को जूझना पड़ा है।

संक्षेप में इस रचना की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार रेखांकित की जा सकती हैं:-

(क) वैदिक (तांत्रिक) यज्ञों तथा पठन-पाठन की प्राचीन विधि-प्रविधि के संबंध में पर्याप्त प्रामाणिक सामग्री इसमें जुटाई गई है और इस दृष्टि से इस रचना का मूल्य और महत्व बहूत अधिक है। इस कोटि की अन्य कोई रचना पजाबी-हिन्दी में है ही नहीं।

साथ ही यह कहना भी उचित होगा कि यज्ञ-याग के मायालोक का विवरण देने वाला लेखक गुरु-घर की मर्यादाओं का कहीं भी उल्लंघन नहीं करता और इस मायाजाल के भ्रम से दूर रहने की ही प्रेरणा देता है:-

अनंत जग्य करमणं, गजादि आदि धरमणं।
अनेक देस भरमणं, न एक नाम के समं।
...अनादि अगाधि के बिना, समस्त भरम लेखिए।

---

1. भाष्य। महाभाव्य 2. कौमुदी। लघु, मध्य तथा सिद्धांत कौमुदी। 3. हेमचद्र के प्राकृत व्याकरण की ओर संकेत है। 4. अनुभूति स्वरुप कृत 'सारस्वत चंद्रिका (व्याकरण)। 5. 'कल्प-सूत्र 6. पाणिनि सूत्रों की व्याख्या 7. काशिका वृत्ति। व्याकरण ग्रंथ 8. भट्टोजि दीक्षित कृत बाल मनोरमा। पाणिनि सूत्रों की टीका। 9. संभवत : गरुड़ पुराण। 10. पुराण 11. किताब। कुर्आन। 12. याविनी। ग्रीक : अरबी 13. तुर्की।

(ख) लालित्य

शब्द-पद-लालित्य की दृष्टि से यह रचना बहुत महत्वपूर्ण है। ब्रज भाषा के कलेवर में सिमटी पंजाबी तथा फारसी की बहुरंगी शब्दावलि,[1] संस्कृत-पंजाबी-फारसी के शब्दों, प्रत्ययों तथा उपसर्गों के प्रचुर प्रयोग[2], अलंकरण सामग्री के अद्भुत विधान[3] एवं छन्द विधान की अनूठी प्रस्तुति[4] जैसे महनीय तत्व इस रचना को 'ललित-ललाम' पद पर अभिषक्त कर देते हैं।

(ग) उत्तर-गर्भित-प्रश्न

श्री दशम ग्रंथ में अनेकशः ऐसे प्रश्नों की अवतारणा की गई है जिनके उत्तर प्रश्न में ही निहित हैं। चूंकि इन प्रश्नों का उत्तर सकारात्मक (स्वीकृति मूलक) ही हो सकता है रूप धारण कर लेता है। उत्तर गर्भित प्रश्नों की यह शैली सभी दृष्टियों से महनीय प्रतीत होती है। ***'बहर तवील पचमी'***[5] में ये उत्तर गर्भित प्रश्न्न उपलब्ध हैं :

कि[6] अरूपस, कि अरंजस,
कि अनामस, कि अकामस,
कि अभेखस, कि अलेखस।

इसी 'बहर' का ये रूप संस्कृत के अव्यय 'च' (अर्थ : और) के प्रयोग से बनाए गए है -: 'अणंगस्च' (अनंग), अथानस्च,अमानस्च।

इस रचना को प्रायः अपूर्ण बताया जाता है। साथ ही यह भी कहा जाता है कि इस रचना के प्रारंभिक अवतरण (मंगल वचन) भ्रांतिवश दशम ग्रंथ की अन्य रचनाओं में मिला दिए गए। श्री दशम ग्रंथ में इसका क्रम भी भिन्न-भिन्न लिपिकों-संपादकों ने पृथक्-पृथक् रूप से रखा है। निश्चय ही इस महनीय कृति को उत्तम कोटि के वैज्ञानिक सम्पादन की प्रतीक्षा है।

अध्याय-१२

---

1. संस्कृत की शब्दावली को ब्रज और पंजाबी की रंगत देकर इस प्रकार प्रयुक्त किया गया हैः 'जुध्ध को जितईआ, रंग भूम को भवईआ, भार भूम को मिटैया' तथा 'साधना सिधईआ' 'आउ को बढईआ' आदि प्रयोग मननीय हैं। 2. फारसी के प्रत्यय 'दा' का प्रयोग दृष्टवय हैः 'धाउ धाम ते बचिंदा' (बचाने वाला), 'छौनी को छलिंदा' (छलने वाला), 'दोख को दलिंदा' (दलन करने वाला)। 3. अनुप्रास की रुनझुन और यमक की 'ठुमक ठुमक' इस रचना में कहीं भी देखी जा सकती है। इसी प्रकार उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलंकार भी सुरूचिपूर्ण ढंग से प्रयुक्त हुए हैं। 4. कवित्त, सवैया और छप्पय की छटा से विभूषित हैं इस रचना की अनेक पक्तियां। फारसी की कुछ 'बहरें' भी इसमें उपलब्ध हैं। 5. एक लंबा छंद। 'कसीदह' महान कोश। कुछ संपादकों ने यहां 'फारसी पश्तो चाल' का छंद निर्धारित किया है। 6. 'किम्' से विकसित 'की' या 'कि' पंजाबी के प्रश्न वाचक शब्द हैं।

पख्यान चरित्र : एक अपूर्व कथा-संकलन

कथा के माध्यम से नैतिक मूल्यों का प्रस्तवन भारतीय साहित्य की एक चिरपरिचित पद्धति रही है। हमारे प्रमुख संस्कृत कथाग्रंथ-रामायण, महाभारत, पुराण, पंच-तंत्र, वृहत् कथा, कथा-सरित्-सागर एवं भविस्सत्त कहा, (भविष्य बदत्त कथा), 'वड्ड-कहा' (वृहत् कथा), तथा 'पउम चरिउ' (पद्मः रामः चरित) आदि प्राकृत-अपभ्रंश कथा ग्रंथ इसी पद्धति का ही अनुसरण करते हैं। दशम गुरु जी भारतीय कथा-साहित्य के अतिरिक्त अरबी-फारसी की प्रमुख कथा-कृतियों से भी भली-भांति परिचित थे। यही कारण है कि उनकी इस विचाराधीन कृति में भारतीय तथा अभारतीय[1] कथा-विधा के विभिन्न उपादानों की सहायता से रचित एक अपूर्व कथा-लोक का साक्षात्कार किया जा सकता है। श्री दशम ग्रंथ में संकलित तथा फारसी भाषा में निबद्ध उनकी कहानियां (हिकायात[2]) बेमिसाल मानी जाती हैं।

खेद है कि कुछ विद्वान आनोचक श्री दशम ग्रंथ में संकलित - परम्परा से निरपवाद रुप में संकलित - इस रचना को गुरु जी की रचना स्वीकार नहीं कर पाते। इस रचना के कुछ अंशों का श्रृंगारी एवं तथाकथित रूप से अश्लील होना उनका प्रमुख आक्षेप रहा है।

वस्तुतः साहित्य में श्लील-अश्लील का निर्धारण सार्वभौम स्तर पर एक चिरन्तन समस्या है। इसका समाधान सन्तोष जनक तथा सर्वमान्य अथवा बहुमान्य रुप से भी आज तक नहीं किया जा सका। इस गम्भीर समस्या के संबंध में जागरुक विचारकों की अपनी-अपनी धारणाएं रही हैं और इनमें परस्पर कोई सामंजस्य भी दृष्टिगोचर नहीं होता।

उदाहरण के लिए, आचार्य मम्मट ने एक संस्कृत-पद्य को इस आधार पर अश्लील करार दे दिया कि उसमें प्रयुक्त एक संस्कृत शब्द (शब्दांश)

---

1. उदाहरण के लिए 'यूसुफ-जुलेखा' की कहानी (चरित्र सख्या 201) को देखा जा सकता है : 'रुम सहर के साह की सुता 'जली खां' नाम'...'मिसर साह के पूत...यूसफ खां जिहनाम कहिज्जै'। 'जली खां' = 'जुलेखा बना। 2. फारसी में लिखी गई दशम गुरू जी की 11 कहानियां।

उनकी अपनी मातृ भाषा (कश्मीरी) में अश्लील (किसी यौन अंग का बोधक) माना जाता है। 'रूचिं कुरू' में दो अक्षरों ('चिं' तथा 'कु') को - अनपेक्षित रूप से मिला कर- 'चिंकु' शब्द उनके हाथ लगा और (द्राविडी-प्राणायाम से उपलब्ध) इस शब्द के कश्मीरी भाषा में अश्लील होने की दुहाई उन्होंने दी है। साहित्य में अश्लील तत्वों के सन्धान का संभवतः यह सीमान्त निदर्शन है।

संयोग से यदि किसी भाषा का कोई शब्द या शब्दांश मात्र उच्चारण के स्तर पर किसी अन्य भाषा में अश्लील माना जाता है, तो उसका प्रयोग वर्जित मानना, मति-विभ्रम की पराकाष्ठा है।

इस कोटि की मानसिक विकृति ने-विशेषतः इस विकृति के कारण दिए गए फतवों ने न जाने कितने कवियों अथवा कलाकारों को आहत तथा अपमानित किया है।

हमारे मूर्धन्य कवि कालिदास भी इस प्रकार के आक्षेप के शिकार बनाए गए। 'कुमार सम्भव' में-विशेषतः शिव पार्वती के अन्तरंग क्षणों का विवरण देते समय- कालिदास अपनी वाणी और भावनाओं पर संयम खो बैठे। फलतः शिव-पार्वती के मिलन को उन्होंने असंयत ढंग से अश्लीलता के पारदर्शी आवरण में प्रस्तुत किया। यह था, कालिदास के विरूद्ध तैयार किया गया एक अतिवादी आरोप पत्र।

साथ ही यह प्रवाद भी फैलाया गया कि अपने इस अपराध (शिव-पार्वती के अंतरंग क्षणों को रूपायित करने) के फल (दण्ड) स्वरूप कालिदास कुष्ठी हो गए। वे कुष्ठी हुए हों या नहीं, परन्तु कुष्ठ से भी बड़ा कलंक इस महाकवि के नाम पर लगा ही दिया गया। कम से कम, मानहानि का एक निकृष्ट प्रयास इस प्रकार अवश्य किया गया।

चूंकि साहित्य अथवा अन्य कलाएं मानवीय भावनाओं का चित्रण प्रायः किया करती हैं और चूंकि इन भावनाओं का सर्वाधिक कोमल तथा मानवीय रूप शृंगारी परिदृश्यों में ही उभरा करता है (इसी लिए शृंगार को रस-राज भी कहा जाता है) और यही कारण है कि प्रत्येक साहित्यकार या कलाकार को अपनी रूचि, दृष्टि तथा कलात्मक अपेक्षा के अनुरूप शृंगारी चित्रण करना ही पड़ता है।

दूसरी ओर, श्लील तथा अश्लील के मध्य कोई सुस्पष्ट सीमा रेखा-लक्ष्मण रेखा-भी आज तक खैंची नहीं जा सकी। फलतः' शुद्धतावादी (अतिवादी) पद्धति से किंचित् मात्र भी स्खलन अथवा दृष्टि भेद अथवा लेखक

की अपनी विशिष्ट मानसिकता के कारण किसी भी रचना का श्लील से - तथा कथित-अश्लील हो जाना सर्वथा संभावित रहता है। साथ ही आज के बुद्धिवादी युग में जब यथार्थवाद से भी आगे बढ़ कर 'अति यथार्थवाद' तथा 'उत्तर आधुनिकता' के प्रति लेखक-कलाकार अधिकाधिक प्रतिबद्ध प्रतीत होते हैं, तब तो श्लील-अश्लील के पचड़े में न पड़ कर (सर्वथा परिवर्तित युग बोध की पृष्ठभूमि में) विशुद्ध कलात्मकता अथवा लेखकीय-उद्देश्य-परकता को केन्द्र में रख कर ही श्री दशम ग्रंथ पर विचार किया जाना अपेक्षित है।

इसके अतिरिक्त श्री दशम ग्रंथ के अध्ययन की प्राथमिकताओं में इस ग्रंथ रत्न के शुद्ध पाठ की प्रस्तुति सर्वोपरि है। श्लील-अश्लील की चर्चा बाद में चलाई जा सकती है।

दुर्भाग्य से आज स्थिति यह है कि इस महान् कृति की भाषा, तद्गत बिंब-विधान तथा इसकी छांदसिक प्रस्तुति स्थान-स्थान पर दुर्बोध, खण्डित एवं अग्राहय रुप में ही उपलब्ध है। इस सर्वाधिक जटिल समस्या का समाधान तभी सम्भव हो सकेगा, जब इस ग्रंथ रत्न का आधुनिक पाठालोचन की विधि-प्रविधि[1] के अनुसार तथा इसकी विभिन्न पाण्डु लिपियों एवं मुद्रित संस्करणों में उपलब्ध पाठ का व्यापक, गम्भीर तथा तुलनात्मक अध्ययन किया जाएगा।

भारत और भारत से बाहर यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों के प्रसिद्ध पुस्तकालयों, व्यक्तिगत संग्रहों तथा पुरातत्व केन्द्रों में सुरक्षित इसे ग्रंथ-रत्न की प्रतियों के तुलनात्मक अध्ययन की सहायता से इसके प्रामाणिक पाठ का सम्पादन हो सकेगा। अस्तु।

पख्यान चरित्र[2] : संरचना तंत्र

एक ओंकार ...स्री वाहिगुरु जी की फते है।
स्री भगौतीए[3] नमह
पख्यान चरित्र लिख्यते
पातसाही १०।

1. इस विधि-प्रविधि के विवेचन के लिए देखिए, 'पाठालोचन के सिद्धात' लेखक : डॉ. राजगुरू।
2. इस रचना के कई नामातर प्रचलित हैं। उपाख्यान से विकसित 'पाख्यान' तथा 'चरित्र' (चारेत्तर) शब्द के योग से बना 'पख्यान चरित्र' शब्द हमारी आधार प्रति के अतिरिक्त कई अन्य प्रतियों में भी मिलता है। इसे 'लघु कथा' कहना समीचीन होगा। 3. 'श्री भगवत्यै नमः' का लोकोच्चरित रूप।

इस शीर्षक-अवतरण के साथ यह विशाल कृति दशम ग्रंथ में संकलित चली आ रही है। 7000 से भी अधिक छन्दों तथा 404 अध्यायों (कथाओं[1]) का विस्तार इस रचना को हमारे इतिहास की एक अनमोल धरोहर के रूप में प्रतिष्ठित करता है। इसके प्रारम्भ में खडगधारिणी भगवती की वंदना की गई है:-

त्वप्रसादि

तुही खडगधारी तुही तीर, तरवार, काती कटारी,
...निहारौं जहां आपु ठाड़ी वही है।
तुही जोगमाया, तुही वाकबानी[2],
...तुही बिशन, तूं ब्रह्म, तूं रूद्र राजै,
तुही बिस्व माता सदा जै विराजै।

कथा की प्रस्तुति से पूर्व गुरु जी की विनय-वृत्ति का यह मुखर चित्र अत्यन्त मार्मिक बन पड़ा है:-

अनतरिया[3] ज्यों सिंधु को चहत तरन करि जाउं।
बिनु नौका कैसे तरें, लए तिहारो नाउं।

वे लिखते हैं:-

मेर[4] कियो तृण ते मुहि, जाहि गरीब निवाज न दूसर तोसौ।
भूल छिमो हमरी, प्रभु आपु न भूलनहार कहूं कोऊ मोसौ।
...या कलि मैं, सभि कालि क्रिपान की भारी भुजान को भारी भरोसौ।

'चरित्रोपाख्यान' की गहन रचना-प्रक्रिया तथा इसके प्रस्तुत गुरु गंभीर रुप तथा इसमें अन्तर्निहित दृष्टि के संबंध में गुरु जी लिखते हैं:-

अरघ[5], गरभ, त्रिप, तियन को भेद न पायो जाइ।
तउ तिहारी क्रिपा ते, कछु-कछु कहौ बनाइ।
प्रथम मानि तुम को, कहौं जथा बुध्धि बलु होइ
घटि कविता लखिकै, कबहि हास न करियहु कोइ।
प्रथम ध्याइ स्री भगवती, बरनौं त्रिया प्रसंग।
मो घटि मैं, तुम ह्वै नदी, उपजहु वाक तरंग[6]।

---

1. अध्यायों (कथाओं) के इस संख्या क्रम में एक अध्याय नही है। 324 के बाद 326 वां अध्याय दिया गया है। 325 वां अध्याय अनुपलब्ध बताया गया है।

2. सरस्वती 3. तैरना न जानने वाला 4. मेरु। सुमेरु 5. मूल्य। चीज़ों के चढ़ते उतरते भाव। निरख। तुलनीय : ***'स्त्रिय श्चरित्रं, पुरूषस्य भाग्यं, देवो न जानाति-कुतों मनुष्य'।*** 6. घट (मनःकलश), नदी (सरस्वती) तथा 'वाक् तरंग' जैसा साभिप्राय बिंब-विधान यहां द्रष्टव्य है।

48 पद्यों के इस प्राक् कथन में भगवती (चण्डी) के सर्व व्यापक रुप के स्तवन-प्रस्तवन, चण्डी चरित्र[1] की असुर-संहार संबंधी अनेक घटनाओं की ओर संकेत, भगवती के जयंती, मंगला तथा काली आदि रुपों-नामांतरों-की एकाकारिता, दुर्गा के अनेक अस्त्रों-शस्त्रों के उल्लेख के साथ-साथ गुरु जी ने अपनी सहज विनय-भावना को भी काव्य की अनन्त सुषमा के साथ प्रस्तुत कया है।

गुरु जी ने विभिन्न कोटिक नारी चरित्रों का 'पख्यान' लिखने से पूर्व एक पौराणिक महानारी (भगवती) का पुण्य स्मरण किया है। यह तथ्य एक ओर तो गुरु-घर की नारी संबंधी दृष्टि के अनुकूल है तो दूसरी ओर नारी जागरण हेतु एक प्रतिष्ठित नारी - प्रतीक (चण्डी) को ही अपने युग के समक्ष प्रस्तुत कर गुरु जी ने युग के अनुरुप एक नव-नारी के उदय की घोषणा भी की है। पददलित, शोषित तथा संतापित नारी के समक्ष सर्वथा अवदात तथा अतुल शौर्य-सम्पन्न एक वीरांगना का आदर्श प्रस्तुत करना सभी दृष्टियों से महनीय एवं समीचीन है।

1. प्रथम अध्याय की पुष्पिका में इसे 'चण्डी-चरित्र' भी कहा गया है, ***'इति स्री चरित्र पख्याने चंडी चरित्रे प्रथम ध्याइ समापत मसतु सुभ मसतु'***।

अध्याय-१३

पख्यान-चरित्र : संरचना-तंत्र

'पख्यान चरित्र' की आंतरिक संरचना का मुख्य तत्व है, संवाद मूलकता।

चित्रवती नगरी के राजा चित्र सिंह के मंत्री उसे स्त्री की मानसिकता तथा उसके छली-कपटी रुप का विवरण-अपनी मध्यकालीन मानसिकता के आधार पर- देते हैं। प्रत्येक कथा किसी न किसी अनाम मंत्री के मुख से कहलवाई गई है। इस प्रकार कथा वस्तु के पूर्वापर संबंधों की एक सूत्रता संवादों के माध्यम से सुरक्षित रखी गई है।

चूंकि मंत्री गण अपने-अपने क्रम से कथाएं कहते हैं और राजा एक मूक श्रोता की भांति इन कथाओं को सुनता है और किसी भी बिंदु पर 'ननु नच' नहीं कर पाता, इस लिए संवाद की पूरी स्थिति तो नहीं बन पाती। परंतु कथा प्रवाह को संतुलित रखने और दिशाहीन होने से बचाने के लिए, 'मंत्री बाच'[1] के साथ संवाद की एक स्थिति यथा कथंचित् बना कर रखी गई है।

फलतः पंचतंत्र आदि कथा-ग्रंथों की संवाद मूलकता इस रचना में भी विद्यमान है। इसी लिए पुष्पिकाओं में इसे 'मंत्री-भूप-संवाद' भी कहा गया है।

कथा-स्रोत

'पख्यान चरित्र' की कथाएं विभिन्न स्रोतों से संकलित की गई हैं। पारम्परिक कथाएं संस्कृत-अरबी- फारसी के कथा ग्रंथों पर आधारित हैं। पंजाब की लोक कथाओं हीर-रांझा, सोहणी-महीवाल, मिर्जा-साहिबा को भी इसमें स्थान दिया गया है। कुछ कथाएं मध्यकालीन इतिहास अथवा जन-श्रुतियों पर आधारित हैं। जहांगीर, नूरजहां, औरंगज़ेब, रोशनआरा और संभा जी से संबंधित कहानियों में इतिहास और जनश्रुतियों का रोचक संगम दिखाई देता है।

---

1. 'उवाच' को प्रायः 'बाच' रूप में प्रयुक्त किया गया है। इसी क्रम में 'नारी बाच', 'राजा बाच' 'जोगी बाच' और 'पुर जन बाच' जैसे प्रयोग द्रष्टव्य हैं।

इस प्रकार यह रचना-कथा-संचयन की दृष्टि से-मानवीय इतिहास के कितने ही युगों, भौगोलिक क्षेत्रों और समुद्र पार से आए फिरंगियों की मानसिकता तथा उनके विभिन्न कोटिक विश्वासों की पुराकथा भी प्रस्तुत करती है।

निश्चय ही समूची सामग्री पुरूष प्रधान समाज की एक संकीर्ण मानसिकता की उपज है और इसी लिए नारी चरित्र को अधिकाधिक कलुषित रूप में चित्रित करने के प्रति इनका आग्रह-दुराग्रह सर्वत्र लक्षित किया जा सकता है।

अधुनिक नारी-मनोविज्ञान इस दुराग्रह को पुरूष समाज की कुंठित-दमित काम-वासनाओं की ही उपज मानता है। छल और अधिकतर पाशविक बल से नारी का यौन शोषण कर उसे ही बदनाम करने की यह एक नाकाम कोशिश रही है, पुरूष की! नारी का इतिहास अपने परिवार तथा अपने पति के प्रति पूरी निष्ठा का इतिहास है। इसके यत्र तत्र अपवाद मिल सकते हैं। परंतु समूचे तौर पर नारी परिवार की धुरी रही है और उसकी सत्ता समाज कल्याण के प्रति समर्पित रही है, इसमें संदेह नहीं।

साथ ही इस कथा-संग्रह में मिश्रण-अपमिश्रण की संभावना से भी इन्कार नहीं किया जा सकता। लिपिकों और मुद्रकों ने निश्चय ही अपनी ओर से कुछ न कुछ अनधिकृत सामग्री इसमें ठूंस देने का कुत्सित प्रयास किया ही होगा, इसमें सन्देह नहीं।

कथा-उद्देश्य

भारतीय परम्पराएं निरपवाद रूप से सोद्देश्य साहित्य सृजन की पक्षधर रही हैं। ऐसी स्थिति में यहां यह स्पष्टीकरण अपेक्षित है कि इस प्रकार की काम-कथाओं को श्री दशम गुरु ग्रंथ में संकलित करने का उद्देश्य (औचित्य) क्या है? इस शंका का समाधान दो प्रकार से किया जा सकता है। पहले तो यह कि परम्परा से प्रताडित, लांछित एंव अपमानित नारी को प्रत्येक अवांछित, अनैतिक, तथा अमानवीय अत्याचार के साथ-साथ मानसिक उत्पीडन से मुक्ति दिला कर उसे एक आत्म-गौरव सम्पन्न पूर्ण-व्यक्ति के रूप में सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाना गुरु जी के नव-जागरण आन्दोलन का अन्यतम उद्देश्य रहा है। अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने नारी के अबला रुप का दोहन-शोषण करने वाले पुरूष-वर्ग की स्थान-स्थान पर जम कर भर्त्सना की है और एक सामयिक चेतावनी इन शब्दों के माध्यम से दी हैः-

सुधि जब ते हम धरी, बचन गुरु दए हमारे
पूत इहै प्रन तोहि, प्रान जब लगि घटि थारे।
निज नारी के साथ नेहु तुम नित्त बढ़ैयहु
पर नारी की सेज, भूलि सुपने हूं न जैयहु।

अपने पिता (सद् गुरु) की इस मर्यादा को गुरु जी ने शेष पुरूष वर्ग के लिए भी विहित ठहराया है।

पर नारी पुरूष मात्र के लिए वर्जित है यह है 'त्रिया चरित्र' का इतिहासिक सन्देश :-

पर नारी के भजे, सहस बासव भग पाए।
पर नारी के भजे चंद्र कलंक लगाए।
पर नारी के हेत, सीस दस सीस गवायो[1] ***।***

(चरित्र २१-पद्य ५२)

इस प्रकार के कई प्रसंगों में गुरु जी ने केवल पुरूष को ही संबोधित किया है, नारी को नहीं। यह है गुरु-घर में नारी की मर्यादा:-

सो किउ मंदा आखीऐ, जितु जंमहि राजान।

कह कर आदि गुरु जी ने जगत् के शासकों (महान् व्यक्तियों) की जननी का शोषण, पीडन तथा अवमानन अत्यंत गर्हित कृत्य बताया है।

जिन स्त्रियों को व्यभिचारी पुरूषों ने पतन के गर्त में धकेल दिया है और जिन्हें पुरूषों के छल छन्द (दन्द-फन्द) ने अपने रूप-यौवन की कीमत पर सब कुछ पा लने का हुनर सिखा दिया है, उन स्त्रियों के फरेबी हथकंडों से सदाचारी निरीह पुरूषों को सावधान करना, गुरु जी का दूसरा उद्देश्य हो सकता है। चूंकि सामाजिक जीवन को अधिकाधिक पवित्र तथा धर्म-परायण बनाना गुरु जी का लक्ष्य था। इस लिए समाज के प्रायः प्रत्येक स्तर[2] पर पसरे पड़े पाप आचरण तथा यौन शोषण का पर्दा फाश करने वाली इन बोध-कथाओं की एक विशाल प्रस्तुति उन्होंने की है।

पख्यान-चरित्र : कथा-संसार

इस संकलन की पहली कथा चित्रवती नगरी के राजा चित्रसिंह, उसकी दो पत्नियों और उसके एक निर्दोष पुत्र के दुःखांत को प्रस्तुत करती है। चूंकि

---

1. इस छन्द में पर नारी गमन के कारण हुई क्रमशः इन्द्र, चन्द्र और रावण की दुर्गति की ओर संकेत दिया गया है। 2. गुरू जी ने सम सामयिक समाज के प्रत्येक घटक को किसी न किसी रूप में पाप आचरण में लिपृ चित्रित किया है। 'जोगी भोगी' (चरित्र 34) 'सुरग नाथ - रंगनाथ जोगी' (चरित्र 81), पीर-फकीर (चरित्र 42), 'खुदाई लोक' (मुल्ला : चरित्र 99) आदि कथाओं में असामाजिक व्यमिचार की कलई खोली गई है। 'नाम बेग' की कहानी में अप्राकृतिक मैथुन की प्रवृति संकेतित है (चरित्र 105)

शेष कथाए इसी कथा के साथ मूलतः सम्बद्ध हैं, इस लिए इस पहली कथा को 'पख्यान चरित' की बीज-कथा कहा जा सकता है। इस कथा के प्रमुख बिंदु ये हैं:-

(1) राजा चित्र सिंह ने (अपने रुप, पौरूष तथा यौवन पर मुग्ध) इन्द्र लोक की एक अप्सरा के साथ विवाह रचा लिया,

(2) उन दोनों के घर एक पुत्र हुआ। वर्षों तक पति पत्नी साथ रहे और फिर एक दिन वह अप्सरा विश्वामित्र-मेनका-शकुंतला की पुरानी कथा दुहराती हुई उड़नछू हो गई,

(3) तब कामुक राजा ने 'ओड़छा नाथ' (ओड़छा नरेश) के साथ एक सशस्त्र संघर्ष के उपरांत उसकी पुत्री चित्रमती को अपनी दूसरी पत्नी बना लिया।

(4) चित्रवती नगरी सिंह राजा ओर चित्रमती रानी के चित्र विचित्र कथा तंतुओं से 'पख्यान चरित' की बीज कथा का निर्माण हुआ है।

रानी चित्रमती ने चित्रवती नगरी में आकर अपने 'परम मनोहर' तथा नौजवान सौतेले पुत्र के साथ शारीरिक संबंध स्थापित करने का प्रयास किया। उसने उस युवक के समक्ष यह प्रस्ताव रखा :-

बान बधी बिरहा को, बलाइ जो रीझि रही लखी रूप तिहारो।
भोग करो मोहि साथ भली बिधि, भूपति को नहि त्रास बिचारो।
...सो न करै कछु चारु चितैबो को...

भीजत भ्यो न ऐठवारो[1]।

खुले आमंत्रण को ठुकराने वाले अपने सौतेले पुत्र के इस आचरण को चित्रवती सहन न कर सकी :-

वाकी कही न निप सुत मानी, चित्रपती तब भई खिसानी[4]।

राजा चित्र सिंह के कानों में उसने 'किस्सा गोई' का वही पुराना ज़हर उंडेल दिया :-

बड़ो दुसट यह पुत्र तुमारो।

अब 'तिरिया चरित्तर'
देखिए:-

---

1. ऐंठा हुआ। पाठ अस्पष्ट और दुर्बोध है। तात्पर्य यह है कि सौतेले पुत्र ने अपनी विमाता का यह निर्लज्ज तथा निरावरण काम-निमंत्रण ठुकरा दिया। 2. खिसियानी

फारि चीर कर, आपने मुख नख घाइ लगाइ।
राजा को रोषित कियौ, तन को चिहन दिखाइ।

(5) नासमझ राजा रानी की बात पर विश्वास कर अपने बेटे को कत्ल करवाने के लिए तैयार हो गया,

(6) अंततः मंत्रियों के समझाने-बुझाने से राजा ने अपना फैसला बदल दिया। क्योकि मंत्रियों ने कहाः-

त्रिया चरित्र न किनहूं पायो।

और राजा को रानी के आरोप पर पुनर्विचार करना ठीक लगा।

यहा दो कथा-रुढ़ियां प्रयुक्त हुई हैंः-

एक) सौतेली मां का अपने सौतेले पुत्र के साथ काम संबंध स्थापित करने का प्रयत्न,

दो) अपने इस प्रयत्न के असफल रहने पर विमाता का अपने पति को उल्टी सीधी पट्टी पढ़ा कर भड़का देना।

इन दोनों कथा रुढ़ियों ने पंजाब की लोक कथाओं को बहुत सी चटपटी कहानियां दी हैं। 'पूरण भगत' का किस्सा इस कोटि की त्रासदी के ताने बाने से बुनी एक प्रसिद्ध लोक कथा है।

इस प्रकार की त्रासदी का खलनायक होता है कोई बुढ़ाता हुआ पर नासमझ किस्म का राजा या इस कोटि का अन्य तथाकथित सम्भ्रान्त पुरूष। वह अपनी वासना पूर्ति के लिए किसी नव-युवती से दूसरा (तीसरा या चौथा) विवाह रचा लेता हैं, और भूल जाता है कि उसके घर में एक सुंदर युवक (पुत्र) भी मौजूद है। उसे याद ही नहीं रहता कि उसकी अपनी जर्जर काया में किसी नव-युवती को देने के लिए कुछ भी शेष नहीं है।

उधर अतृप्त यौन वासनाओं का तूफान बुढ़ाते पति की नव परिणीता पत्नी के विवेक को रौंद डालता है। ऐसी विकट स्थिति में अपनी यौन-तृप्ति के लिए वह अपने समवयस्क पुरूष-भले ही वह उसका सौतेला पुत्र ही क्यों न हो-के साथ शारीरीक संबंध स्थापित करने के लिए विवश हो जाती है।

अनमेल विवाह की इस त्रासदी का खलनायक है, पुरूष। पर मध्य युगीन सामंती मान्यताएं उसे निर्दोष बता कर सारा पाप स्त्री के सिर मढ देती हैं।[1]

---

1. अनमेल विवाह के अभिशाप को रेखांकित करने वाली इसी प्रकार की - कुछ अन्य कथाए भी इस 'चरितावलि' में संकलित हैं। दखिए ' चरित्र 25, 42 आदि।

इन घटनाओं-दुर्घटनाओं के वात्याचक्र में बेचारे निरीह युवक (बेटे) को या तो अपना अंग-भंग करवा कर पंगु जीवन का अभिशाप भोगना पड़ता है या फिर उसे अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ती है, अनमेल विवाह की वेदी पर।

नारी पात्र : वर्गीकरण

'पख्यान चरित्र' के नारी पात्रों को- मात्र सुविधा के लिए-इन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :-

अ) उदात्त

इ) सामान्य,

उ) निकृष्ट।

अ) उदात्त पात्र

नारी की अशेष गरिमा, उसकी प्रबल इच्छा शक्ति तथा उसके उदात्त मानवीय क्रिया-कलापों के समन्वित रूप का साक्षात्कार इस वर्ग के पात्रों में किया जा सकता है। ये पात्र नारी जाति की समस्त बौद्धिकता, उच्चस्तरीय मानसिकता तथा मानव कल्याण के प्रति समर्पित उसके समूचे अस्तित्व का जीवंत साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं।

इस वर्ग के नारी पात्रों का नेतृत्व गुरु जी ने 'चण्डी' को सौंपा है। ये पात्र घर बार की साज-संभाल और बाल-बच्चों के पालन-पोषण के साथ-साथ उन सभी विकट स्थितियों से भी जूझते हैं, जो स्थितियां प्रायः पुरूष के अपने हठ, मिथ्या विश्वास तथा तुच्छ स्वार्थों के कारण उपजती हैं। ये स्थितियां-निरपवाद रूप से-सामाजिक असंतुलन, विविध कोटिक भेद-भाव तथा नारी-अवमानन जैसी अनेक विकट असंगतियों-विसंगतियों को जन्म देती हैं।

अपने लिए बड़े से बड़ा ख़तरा मोल लेकर भी ये नारी पात्र निर्भय रूप से विकट संकटों से टकराते हैं और अपने कौशल,अपने विवेक और अपने प्रचण्ड साहस के बल-बूते पर अपने ऊपर या परिवार या समाज अथवा राज्य (राष्ट्र) के ऊपर मंडराते संकटों पर विजय प्राप्त करते हैं। ऐसे कुछ अविस्मरणीय नारी चरित्रों को दशम गुरु जी ने रुपायित किया है। एक महिमामयी नारी-चरित्र के प्रमुख बिंदु ये हैं :-

1) द्रिग-धन्या : 'सिरोमणि' नगर में सिरोमणि नामक राजा था और द्रिग-धन्या थी, उसकी रानी (चरित्र : 81),

2) एक बार राजा ने एक जोगी रंगनाथ को ज्ञान-चर्चा (ब्रह्म-वाद) के लिए महल में बुलाया। राजा और जोगी के बीच कुछ नोक झोंक हुई। अंततः 'जोगी' के इस वचन ने राजा के मन में विषाद-अवसाद भर दियाः

बिना नाम ताके जपै, बाल ब्रिध्ध कोऊ होइ।
राव, रंक, राजा सभै, जियत न रहसि कोइ।

राज-काज और जगत् से उदास होकर राजा ने नाम-जप के लिए तपोवन जाने का संकल्प कर लिया।

3) राजा के इस पलायन-परक संकल्प से रानी की आत्मा कांप उठी। उसने मंत्री से मंत्रणा कर जोगी को फिर महल में बुलाया। जोगी की पलायन वादी दृष्टि और उसके दुष्प्रभाव से राजा और राज्य को बचाने के उद्देश्य से उसने जोगी की हत्या करवा दी। राजा को सूचना दी कि जोगी ने समाधि ले ली है।

4)रानी ने राजा से कहा, जोगी ने समाधि लेने से पूर्व आपके लिए यह सन्देश दिया है :-

तुम बैठो ग्रिह ही मैं रहीअहु।.....
इन रानिन कौ तापु न दीजहु।
राज जोग दोनों ही कीजहु।

जोगी के समाधिस्थ होने से राजा की उदासी और गहराई। रानी ने बहुत ऊंच-नीच समझाया। पर उल्टे राजा उसे ही ज्ञान का उपदेश देने लगाः

को माता, बनिता, सुता, पांच तत्त की देह।
दिवस चार को पेखनो, अंत खेह की खेह।

5) रानी ने अपने कुछ विश्वस्त व्यक्तियों की सहायता से जंगल में गुपचुप एक मंदिर बनवा लिया और राजा को साथ ले कर उसी मंदिर में चली गई।

(6) वहां रानी का एक विश्वस्त पुरूष दिवंगत जोगी का भेस बना कर आया। रानी ने राजा से कहा कि यही है वह जोगी। अब यह धर्मराज का संदेश लेकर आपके पास आया है।

7) राजा ने धर्म राज का सन्देश सुनाने की प्रार्थना की। जोगी ने राजा

को नदी में स्नान कर आने को कहा। राजा स्नान करने चला गया।

8) अब रानी ने मंदिर की छत पर एक अन्य पुरूष को आकाश वाणी के अंदाज़ में 'साधु, साधु, साधु' बोलने के लिए बैठा दिया।

9) राजा के लौटने पर जोगी ने राजा से कहा कि धर्मराज आपसे बहुत रूष्ट हैं। क्योंकि अपने बन-वास के कारण आपने बहुत लोगों को भयंकर संकट में डाल दिया है। उनकी आज्ञा हैः-

ब्रिध्ध मात अरू तात की सेवा करियो नित्त।
तिआगि न बन जाइयौ, यहै धरम सुनु मित्त।

अन्त में, उसने धर्मराज की यह चेतावनी भी सुना दी कि यदि ऐसा न किया तोः-

भ्रमत नरक महि रहियहु

10) मंदिर की छत पर से 'आकाश-वाणी' हुई, साधु, साधु, साधु! राजा को इस बात पर यकीन हो गया। अब उसने निश्चय कियाः-

दिन को राजु आपुनौ करिहौं।
परे रात्रि के रामु सुमरिहौं।

रानी ने इस प्रकार अपने विवेक और कौशल से राजा को अपने कर्तव्य सम्पन्न करने की अमित प्रेरणा प्रदान की तथा अपने नाम-'द्रिग धन्या' को सार्थक किया। इन उदात्त नारी चरित्रों की पृष्ठभूमि में है, रामायण की कैकेयी का सुर-असुर संग्राम में अपूर्व पराक्रम (चरित्र 122) दुर्भिक्ष दूर करने के लिए श्रृंगी ऋषि को तपोवन से नगर में लाने वाली 'सरुपा' नामक रुपा जीवा का महान् आत्म-त्याग (चरित्र 144) तथा नर-वेश धारण कर अपने पिता के शत्रुओं से लोहा लेने वाली एक पठान वाला का चरित्र (96)। इस कोटि के अमित प्रेरणा प्रद प्रसंग श्री दशम ग्रंथ में संकलित हैं। मुग़ल सम्राट् शाहजहां की एक बेग़म का यह चरित्र भी इस सन्दर्भ में विचारणीय है।

मुगल सम्राट् शाहजहां एक पठान सरदार दरिया खां को खत्म करना चाहता था। यह सरदार शाहज़हां के दिल-दिमाग़ पर इस तरह हावी हो चुका था कि शाहजहां रात में सोते हुए भी उसका नाम बर्राने लग पड़ता था। पति को इस संकट से उबारने के लिए उसकी बेग़म ने अपने छल-बल से दरिया खां को जीवित ही दफ़ना दियाः-

1) बेग़म ने अपनी एक विश्वस्त सखी को (एक छल काम-आमंत्रण के साथ) दरिया खां के पास भेजा,

2) उस सखी ने दरिया खां को बताया कि बेग़म आप पर आसक्त हो गई है और आपसे एकान्त में मिलना चाहती है,'

3) ख़ान फौरन तैयार हो गया। सखी ने अपने षड्यंत्र के अनुसार खान को एक 'देग' में छिप कर बैठने को कहा। खान के देग में बैठ जाने पर सखी उस देग को उठवा कर महल में दाखिल हुई। 'देग' का राज़ कोई भाप तक न सका,

4) 'देग' बेग़म के सामने पेश की गई। बेगम ने शाहजहां को बुला कर पूरी बात बता दी और कहा कि 'अब जो करना है, सो करो',

5) शाहजहां की सलाह पर बेग़म की सेविकाएं उस देग को उठा कर काज़ी, मुफ़ती और कोतवाल के सामने ले गई और कहने लगीं कि 'इस देग में एक भूत बंद है। अब इसे दफनाया जाए या जला दिया जाए?

6) काज़ी, मुफ़ती आदि न्यायिक अधिकारियों के आदेश पर देग को 'भूत' समेत चांदनी चौंक में दफना दिया गया।

अंत में लिखा है:

जीति रह्यो दल साह को, गयो खजाना खाइ।
सो छल सौं, त्रिय भूत कहि दीनो गोरि[1] गडाई।

एक अबला ने इस प्रकार अपने छल बल से एक दुर्दांत डाकू और हत्यारे को न्याय-विधि का मज़ाक सा उड़ाते हुए ज़मींदोज़ करवा दिया। जहांगीरी 'अदल'[2] की सीमाओं में रहते हुए बेग़म ने बड़ी सूझ-बूझ के साथ इस काम को सरंजाम दिया।

उदात्त नारी चरित्र (वीरांगनाएं)

श्री दशम ग्रंथ में चित्रित कतिपय नारी चरित्रों का अद्‌भुत पराक्रम, उनका अप्रतिम साहस तथा उनकी मानवीयता सत् साहित्य की एक अपूर्व उपलब्धि कही जा सकती है।

'कहलूर' (वर्तमान बिलास पुर : हिमाचल प्रदेश) के राजा अभै सिंह[3] और उसके साथियों को राजा के दुश्मनों (खान : तातार लोगों) ने धोखे से मार गिराया। यह समाचार सुन कर राजा अभै सिंह की रानियों ने यह निर्णय लिया :-

1. गोर : कब्र ('इ' : अधिकरण सूचक) 2. इस चरित्र की पहली चौपई में कहा गया है : 'जहांगीर आदिल मरि गयो, साहि जहां हजरति जु भयो' (चरित्र : 82)। आदिल = न्यायकारी। हजरत : हाकिम। बादशाह। 3. मुद्रित पाठ है, 'अभै सांड'।

जो हमरे पति लरि मरै, समूह बदन ब्रण[1] खाइ।
तो हमहूं सभ लरि मरै, नर को भेख बनाइ।

(चरित्र १२२)

ये वीरांगनाएं अद्भुत युद्ध कौशल प्रदर्शित कर वीरगति को प्राप्त हुईः-

प्रीति पिया की जो लरी, धंनि धंनि ते नारि
पूरि रहयो, जसु जगत मैं, सुरपुर बसी सिधारि।

एक अन्य वीरांगना की वीर-गाथा अत्यन्त रोमांचक तथा नाटकीय कही जा सकती है। रस मंजरी पंजाब की एक वीर-बाला थी। एक बार उसका पति परदेस गया। चोरों को उसकी अपार धन सम्पत्ति का पता था। पति की अनुपस्थिति में वे उस पर टूट पड़े।

उसने छलपूर्वक चोरों के सरदार से कहाः-

सुनु तस्कर मैं नार तिहारी। अपनी जान करहु रखवारी।
सभ ग्रिह को धनु तुम हरहु, हमहूं संगि लै जाहु।
भांति-भांति के रैनि दिन, मो सों केलि कमाहु।

इसके पश्चात् रानी ने चोरों को भोजन करने का निमंत्रण दिया। इस पर चोर प्रसन्न हो गए।

रसमंजरी ने चोरों को चौबारे में चढ़ा दिया और बाहर से ताला लगा दिया। नीचे आकर उसने एक कड़ाही में पकौड़े तले और चोरो के सरदार की आंख बचा कर उनमें जहर मिला दिया। चोर ये पकौड़े खा कर मर गए। अब उसने चोरों के सरदार को अपने कपट जाल में फंसा कर चालाकी से उसके सिर पर खौलता हुआ तेल डाल दिया :

चोर राज जरि कै मर्यो, चोर मरे विखु खाइ

(चरित्र ३२)

इ) सामान्य नारी

सामान्यत :- भारतीय नारी अपने परिवार की परिधि तक ही सीमित रही है। प्रायः घर-बार की साज संभाल और बच्चों के लालन पोषण तक ही सीमित रही है उसकी जीवनचर्या।

समाज, राज्य या राष्ट्र की समस्याओं से दो चार होने का अवसर उसे प्रायः नहीं दिया गया। पुरूष-प्रधान समाज में प्रायः सर्वत्र उसकी यही नियति

1. ज़ख्म

रही है। वस्तुतः पुरूष के बर्बर एकाधिकार, उसके स्वेच्छाचार तथा उसकी अनियंत्रित काम वासनाओं के निरंतर दबाव के कारण नारी के स्वतंत्र व्यक्तित्व का समुचित विकास हो नहीं पाया।

फलतः साहित्य में निरीह सी घरेलू स्त्री अक्सर गुमनाम ही रह गई। उसका 'नोटिस' तभी लिया गया जब परिस्थितियों ने उसके अन्तर्मन में निहित किसी उदात्त अथवा निकृष्ट (पतित) भाव को उजागर किया।

निष्कर्ष यह कि सामान्य घरेलू स्त्री को कोई उल्लेखनीय स्थान साहित्य में नहीं दिया जा सका।

भलो भलो कहि छोड़िए, खोटे ग्रह जप दानु।

वाली कहावत नारी के इस पक्ष पर भी पूरी तरह से लागू होती है।

(उ) निकृष्ट-नारी

मनुष्य के उत्कृष्ट अथवा उसके निकृष्ट रूप को ठीक-ठीक परिभाषित कर पाना एक दुष्कर कर्म माना जाता है। मनुष्य के आदर्श (सर्वोत्कृष्ट) रूप में भी निकृष्ट तत्व लक्षित किए जा सकते हैं और विभिन्न कारणों से किए भी गए हैं। साथ ही निकृष्ट मानव चरित्रों में उत्कृष्ट तत्वों का सर्वथा अभाव ही हो, यह स्थिति भी संभव नहीं है।

फलतः मानवीय भावनाओं की अधिकतम व्यावहारिक एवं सक्रिय उपस्थिति उत्कृष्ट-मानवीय चरित्र की एक कसौटी मानी जा सकती है। दूसरों के लिए-हर कीमत पर-अधिकाधिक सुख, शांति तथा सुविधा जुटाने के प्रति समर्पित (सात्विक)भाव मानव-चरित्र की उत्कृष्टता का अन्यतम मापदण्ड हो सकता है।

इन मानदण्डों के आधार पर श्री दशम ग्रंथ के नारी चरित्रों का एक संक्षिप्त सा परिचय यहां दिया जा रहा है।

पतित, दुराचारी तथा अनाचारी पुरूषों के छल-छंद, उनकी अनियंत्रित काम वासनाएं तथा नारी-देह के कारोबार में लिप्त पुरूषों की अर्थ-लिप्सा आदि कारणों से नारी को निकृष्ट रूप में जीवन बिताने के लिए प्रायः बाध्य होना पड़ता है। निश्चय ही कई बार नारी की अपनी कामुक-वृत्ति या उसकी अपनी अर्थ लिप्सा भी उसे ले डूबती है। पर मुख्य रूप से पतित पुरूष ही नारी के अधः पतन की भूमिका तैयार करता रहा है। इस इतिहासिक तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

नारी हृदय की सहज कोमलता, दयालुता तथा सहिष्णुता को खण्डित करने वाली प्रमुख सामाजिक परिस्थितियां प्रायः ये रही हैं, अनमेल विवाह, पति द्वारा उपेक्षा, पतित पुरुषों का मायाजाल तथा आर्थिक संकट आदि।

'पख्यान चरित्र' में सामाजिक विसंगतियों से जूझती और इनके दबाव में टूटती नारी के अनेक चरित्र अंकित किए गए हैं। इनमें से कतिपय चरित्रों की व्यथा-गाथा यहां दी जा रही है :

1. अनमेल विवाह

समाज के कुछ सम्पन्न तथा सत्ताधारी लोग आयु में अपने से छोटी स्त्रियों के साथ विवाह करते रहे हैं। इन स्त्रियों की बहु-आयामी दुर्गति की कितनी ही कहानियां लोक-स्तर पर प्रचलित रही हैं।

'दून' (पांवटा) क्षेत्र विपन्न लोगों से भरा पड़ा था :

गंग जमुन भीतर बसै, कौलासर[1] की दून।
तिह ठां लोग बसै घनै, प्रतछ पसू की जून।

(चरित्र : २५)

इस क्षेत्र के एक बुढ़ाते राजा की युवा पत्नी को राज-पाट के उत्तराधिकारी (पुत्र) न होने की चिंता खाए जा रही थी :

प्रेम कुआरी ताकी इक रानी।
बिरध राव लखि करि डरपानी।
या के धाम एक सुत नाहीं।
इह चिंता ता के चित माहीं।

रानी सोचती रहती :

पुत्र न याके ग्रिह भयो, बिरध गयो है राइ।
केल कला तै थकि गयो, सकत न सुत उपजाइ।

अब राज-पाट के उत्तराधिकारी की लिप्सा से एक योजना (षड्यंत्र) को कार्यान्वित करने की ठान ली, रानी ने। उसने एक गर्भवती स्त्री को अपने महल में रख लिया और यह अफवाह फैला दी कि 'मेरे पांव भारी हैं'। समय पर एक लड़के का जन्म हुआ और रानी ने उसकी मां को पर्याप्त धन देकर उसके पुत्र को मोल ले लिया। वह लड़का शेरसिंह के नाम से उस राज वंश की परम्परा को आगे बढ़ाने लगा।

---

1. 'पांवटा' के पास 'कौला वाला भूड' आज भी है। संभवतः इसी स्थान की ओर संकेत है। मुद्रित पाठ 'कौलाखर' है। 'कौल' शब्द कमल से विकसित हुआ है।

एक महत्वपूर्ण उद्देश्य के लिए किया गया यह षड्यंत्र (चरित्तरः चलित्तर) कितने ही तथा कथित शुभकर्मों से अधिक प्रशस्य है, इसमें सन्देह नहीं।

'काने राव' की कथा

एक काने राजा की सुन्दर पत्नी थी, चाचरमती। अपने काने पति का सहवास उसे स्वभावतः अरूचिकर था। होली के दिनों में वह एक सुन्दर नर्तक ('नटुआ') पर आसक्त हो गई। होली में रानी ने राजा की आंख गुलाल से भर दी। अब राजा लगभग अंधा हो गया। रानी ने इस मौके का फायदा उठाया और उस सुन्दर युवक के साथ रतिक्रीड़ा की। अंत में:-

जब लगि न्रिप द्रिग पोछि करि, देखन लग्यो बनाइ।
तब लगि रानि मानि रति, नटुआ दियो उठाइ।

अनमेल विवाह की कथाओं में अतृप्त यौन वासनओं का ऐसा तूफान प्रायः देखा जाता है।

'परदेसी पति'

पति का प्रवास नारी के लिए विकट संकट का समय होता है। इस प्रसंग में उपेक्षिता-प्रतीक्षा रत-नारी की मनो-व्यथा लोक गीतों में कहीं भी सुनी जा सकती है। इस व्यथा से व्यथित एक नारी का रोमांचकारी इतिवृत्त इस प्रकार उपलब्ध है:-

बनिया एक पिसौर[1] मैं, ताकी कुक्रिया नारी,
तांहि मारि, ता सौ जरी'...

(चरित्र१९)

बनिक बनिज हित गयो, ताते रहो न जाइ,
एक पुरख राखत भई, आपुनो धाम बुलाइ।

अपने इस 'पुरख' के कहने पर उस 'कुक्रिया' नारी ने अपने रोते-दुध मुंहे-पुत्र को मार डाला। क्योंकि उसके रोने चिल्लाने से 'पुरख' का मज़ा किरकिरा हो जाता था। जब उस 'पुरख' को बच्चे की हत्या का पता चला तो उसने उस औरत को खूब फटकारा उसने कुद्ध हो कर 'पुरख' के सीने में भी कटार घोंप दी और इस प्रकार हत्याओं (आत्म-दाह) का एक सिलसिला शुरू हुआ और इसका खात्मा हुआ, इस तरह:-

1. पेशावर

सुत घायो, मित घाइओ, अरु निजु करि पति घाइ।
तिह पाछै आपन जरी, ढोल, म्रिदंग बजाइ[1]।

निश्चय ही इस प्रकार के कुकृत्यों का समर्थन नहीं किया जा सकता। परन्तु इनके मूल में विद्यमान एक असामाजिक कुरीति की सर्वथा उपेक्षा कर सारा दोष इन अभागिनों के सिर मंढ देना भी उचित नहीं होगा।

श्री दशम ग्रंथ में संकलित इन स्त्री चरित्रों के संकलन का उद्देश्य क्या है? इस शंका का समाधान इन कथाओं को मध्यकालीन भारतीय समाज के समूचे संदर्भ में राप कर ही किया जा सकता है। नकारात्मक दृष्टि अपना कर इन्हें दशम गुरु जी के कर्तृत्व ही परिधि से वहिष्कृत कर देना, अपनी संकीर्णता का प्रदर्शन करना होगा।

इन कथाओं की पृष्ठभूमि में विद्यमान है, नारी के अंतहीन शोषण, प्रताडन तथा उत्पीडन की आसुरी गाथा। फलतः इस गाथा के समूचे सामाजिक परिवेश तथा इसकी बहु आयामी व्याप्तियों की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

'पख्यान-चरित्र' पुरुष-पात्र

मध्यकालीन सामाजिक ढांचा पुरूष प्रधान था। पुरूषों ने अपने बनाए इस समाज में पुरूष को ही सर्वोपरि प्रतिष्ठित किया था। वस्तुतः यह ढांचा पुरूषों द्वारा केवल पुरुषों के लिए ही बनाया गया था।

नारी बेचारी की भूमिका तो इस समाज में नगण्य सी ही रही है। पुरूष के एकाधिकार और उसके स्वेच्छाचार ने नारी को सर्वथा अपने अधीन एंव पूर्णतः पंगु बना कर रख छोड़ा था। सभी सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक विधि-निषेध पुरूष के ही पक्ष में थे। नारी केवल इन विधि-निवेधों की मात्र प्रतिक्रिया भोगने के लिए ही अभिशप्त थी।

उदात्त-चरित्र

इस सामाजिक पृष्ठभूमि में पुरूषों के ही उदात्त रुप को सहस्त्रधा महिमा मंडित किया गया। फलतः सभी अवतारों, रामायण-महाभारत तथा पुराणों के पात्रों की विभिन्न कथाओं एवं समसामयिक साहित्य में पुरूष की संप्रभुता ही अक्षुण्ण रखी गई।

1. यह हत्यारिन अंत में अचानक आ पहुचे अपने पति को भी मार कर उसके साथ 'सती' हो गई। 'सती' होने का 'सांग' इन पक्तियों में साकार हो उठा है।

श्री दशम ग्रंथ में ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा उनके अनेक अवतारों-उप अवतारों की जो विशाल शोभामात्रा आयोजित की गई है, उसमें पुरूष-पात्रों के उदात्त चरित्रों की बहुलता एक लक्षणीय तथ्य है।

सामान्य-चरित्र

सामान्य नारी की भांति सामान्य पुरुष भी बहुत बेबसी और बेचारगी में अपने जीवन का भार ढ़ोता है। किसी रचना का चरित-नायक होना या कहीं चर्चित होना उसके भाग्य में कहां!

निकृष्ट : पुरुष

इस कोटि के अनेक पुरूषों की कलई 'पख्यान चरित्र में खोली गई है। 'जोगी' का मुखौटा लगा कर भोग-विलास में मस्त रहने वाले पाखंडी जोगियों[1], अल्लाह के नाम पर लोगों से पैसा ऐंठने वाले 'खुदाई लोक' (मुल्लाओं)[2] और अप्राकृतिक मैथुनकर्मी 'तासबेग' जैसे नराधम समाज के कलंक हैं।

इसी प्रकार चोरों-ठगों[3] और सुनारों[4] के हथकंडों से भी गुरु जी ने अपने श्रद्धालुओं को सावधान किया है। निष्कर्ष यह कि 'पख्यान चरित्र' में तत् कालीन समाज के यथार्थ का साक्षात्कार किया ज़ा सकता है।इस दृष्टि से मध्यकालीन मानसिकता का इससे अधिक प्रामाणिक विवरण अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

साहित्य तथा समाज के स्तर पर इन स्त्री-पुरूष कथाओं की उपादेयता स्वतः सिद्ध है। भारतीय समाज की इस मध्यकालीन बेबाक और बेलाग तस्वीर के लिए भारतीय साहित्य श्री दशम ग्रंथ जी का आभारी रहेगा।

दशम गुरु जी स्वयं तत्कालीन समाज में व्याप्त छल-छंद, दंभ, पाखंड और यौन-अनाचार के प्रत्यक्ष द्रष्टा थे। इस प्रकार के एक षड्यंत्र (कुचक्र) में उन्हें फांसने का भी एक असफल प्रयास किया जा चुका था[5]। इस लिए अपने अतुयायी वर्ग (खालसा) को इस मायावी जाल के हर कील कांटे से परिचित कराना भी उनके जन-आंदोलन का एक उद्देश्य हो सकता है।

निष्कर्ष यह कि इन चरित्र कथाओं का सत्-असत् रूप से मूल्यांकन श्लील-अश्लील के पचड़े में पड़े बिना तथा जडीभूत आचार दृष्टि की जकड़न से बचते हुए विशुद्ध यथार्थवादी दृष्टि से ही करना होगा। तभी गुरु जी के इस महान् साहित्यिक अवदान का वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन किया जा सकेगा।

1. चरित्र 34 2. चरित्र 99 3. चरित्र 75 4. चरित्र 76 5. चरित्र 21

अध्याय-१४

श्री दशम ग्रंथ की भाषा

(1)

भारत को भाषाओं का देश कहा जा सकता है। संसार की प्राचीनतम भाषा (वैदिकी) के साथ हमारी भाषाओं का विकास-क्रम जुड़ा हुआ है। इस प्रकार विगत लगभग चार-पांच हज़ार सालों से हमारे देश में भाषाओं की एक अमर वल्लरी देश के प्रत्येक अंचल में अपने विविध रुपों के माध्यम से तथा लक्षित-अलक्षित भाव से प्रस्यूत प्रचलित-रही है।

दूसरे शब्दों में, विभिन्न परन्तु परस्पर अनुस्यूत भाषाओं की एक प्रायोगिक 'पौध शाला' के रूप में भारत भाषाओं-बोलियों-उपबोलियों को उनकी बीजावस्था से लेकर उनके पल्लावन, शाखा प्रशाखा रूप में उनके विकसन तथा नव-नव आकार प्रकार धारण करने की उनकी आंतरिक ऊर्जा के संचयन, पोषण एंव प्रचलन की आश्वस्ति देता रहा है।

यही कारण है कि हमारी भाषाओं के अंतस्तल में निरंतर गतिशील परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म विकास बिंदुओं की उपस्थिति प्रत्येक भाषा के विभिन्न स्तरों पर सर्वदा लक्षित की गई है। एक से अनेक होने की प्रबल प्रवृत्ति हमारी भाषाओं में सदा-सर्वदा सक्रिय रही है।

दसवीं शताब्दी में रचित एक प्राकृत ग्रंथ 'गोम्मट-सार' की टीका 'जीव तत्व प्रदीपिका' के अनुसार ततकालीन भारत में 18 महाभाषाएं तथा 'सप्त-शत' (700) 'खुल्लक' (क्षुद्रक) भाषाएं प्रचलित थी[1]।

दशम गुरु जी के समय तक भारतीय भाषाओं में पारस्परिक संपर्क इतना व्यापक और गंभीर हो चुका था कि प्रत्येक भाषा अपनी भाषिक आवश्यकताओं के अनुकूल दूसरी सगोत्री भाषा के शब्द भंडार के साथ-साथ उसका व्याकरणिक तंत्र भी बेरोक टोक अपना लेती थी। यही कारण है कि गुरु जी की भाषा में पंजाबी, ब्रज, राजस्थानी का व्यापक प्रभाव लक्षित किया जा सकता है।

---

1. विस्तार के लिए देखिए 'पाइअ-सदद्-महण्णवो' (भूमिका : पृष्ठ : 20, 21 आदि)। अभिधान राजेन्द्र कोश आदि प्राकृत-कोश तथा प्राकृत व्याकरण-ग्रंथ, उनकी टीकाएं और उनके अनुवाद भी दुष्टव्य हैं।

संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंशों का शब्द भंडार तो उनके लिए खुला ही था अरबी के साथ-साथ गुरु जी ने इन भाषाओं की कितनी ही भाषिक (व्याकरणिक) प्रवृत्तियों को भी यत्र-तत्र अपना लिया।

इस प्रकार दशम गुरु जी ने अपनी :-

सगल-संग हम कउ, बणि आई।

जैसी दृष्टि के अनुरुप अपनी भाषा को भी 'सगल-संग' की वेश-भूषा से सुसज्जित किया।

गुरु जी ने एक जागरुक भाषाविद् की भांति अपने बौद्धिक परिवेश में प्रचलित-जीवित- भाषाओं का एक शब्द चित्र इस प्रकार प्रस्तुत किया है :-

कहूं आरबी[1], तोरकी[2], पारसी[3] हो,
कहूं पहलवी[4], पसतवी[5], संसक्रिती[6] हो।
कहूं देस भाखिआ[7], कहूं देव बानी,
कहूं मलेछ भाखिआ[8] ...।

(अकाल उसतत)

शब्द-ब्रह्म की सर्वव्यापकता को गुरु जी ने इस प्रकार रेखांकित किया है।

वस्तुतः दशम गुरु जी की मानवीय संवेदनाओं-उनके सरोकारों-को रेखांकित करता है यह अवतरण! वे मात्र बौद्धिक विलास के लिए ही कवि-कर्म में प्रवृत्त नहीं हुए हैं, बरन, विभिन्न भाषिक स्रोतों के माध्यम से वे मानव मात्र की मूलभूत एकता को उजागर करना चाहते हैं। यही है दशम गुरु जी के रचना संसार का केन्द्रीय बिंदु!

सच तो यह है कि इस कोटि के भाषिक सम्भार के माध्यम से गुरु जी ने घोर आंतरिक विरोधों तथा जटिलतम एवं अमानवीय विषमताओं के रौरव में तड़पती मानवता के समक्ष उसके आत्यंतिक उद्धार का एक अमोध उपाय प्रस्तुत किया।

'सगल संग' के प्रति पूर्णतः प्रतिबद्ध गुरु जी ने अपनी भाषा के लिए अनेक भाषाई स्रोतों से- प्रत्येक आग्रह दुराग्रह से बचते हुए-अपने मानवतावादी विचारों के अनुरूप एक विशिष्ट भाषा तथा तदनुकूल शैली का भी चयन किया।

---

1. अरबी 2. तुर्की 3. फारसी 4. 'अवेस्ता'/प्राचीन फारसी 5. पश्तो 6. संस्कृत 7. लोक भाषा 8. अनार्य भाषा।

अंततः भाषा का यह अतुल सम्भार श्री दशम ग्रंथ की महनीयता को साकार रुप प्रदान करता है।

निष्कर्ष यह कि श्री दशम ग्रंथ की भाषा में अपने प्रतिपाद्य के अनुरुप एक सर्वग्राही, बहुमुखी तथा समन्वय मूलक पद्धति प्रायः सर्वत्र लक्षित की जा सकती है। इस पद्धति के साधक तत्वों का विनियोग गुरु जी ने भारतीय तथा अभारतीय भाषिक सामग्री (तत्सम, तद्भव, देशज शब्द समूह के अतिरिक्त विभिन्न विदेशी स्रोतों से संकलित अथवा आयातित उपसर्ग, प्रत्यय, वाक्य तथा वाक्यांश जैसी भाषिक सम्पदा) की अमित आभा के साथ किया है। इस कोटि की भाषिक समन्विति का इतना विराट् वैभव हमारी किसी भी (मध्यकालीन) रचना में कदाचित् उपलब्ध नहीं है।

पृष्ठभूमि

वैदिकी तथा संस्कृत की परम्परा में क्रमशः विकसित भाषाओं की एक उल्लेखनीय विशेषता रही है, 'चतुर्दिक सरलीकरण'!

सामयिकता, भूगोल एंव उच्चारण की सुविधा के अनुरोध पर हमारी भाषाओं ने अपनी स्रोत भाषा (ओं) से विवेक पूर्ण ग्रहण और त्याग की अपनी प्रवृत्ति के आधार पर बहुत कुछ ग्रहण भी किया और साथ ही बहुत सी असामयिक तथा अव्यवहार्य भाषिक सामग्री को तिलांजलि भी दे दी।

सारस्वत प्रहार

हमारी भाषाएं अपने विकास के प्रारंभिक क्षणों से ही एक विद्रोही हुंकार के साथ अपना मार्ग प्रशस्त करती आई हैं। इस सारस्वत विद्रोह का प्रथम प्रहार परम्परा प्राप्त ध्वनियों तथा ध्वनि-गुच्छों पर हुआ। फलतः उच्चारण के स्तर पर कठिन एंव प्रयोग के स्तर पर जटिल ध्वनियां चूर-चूर हो गईं।

वैदिकी से संस्कृत तथा संस्कृत से पालि आदि भाषाओ के विकास-क्रम में परम्परा प्राप्त कठिन-जटिल ध्वनियों के सहस्रधा सरलीकरण को कहीं भी लक्षित किया जा सकता है। व्याकरण के प्राचीन अनुशासन (कारक, विभक्ति, लिङ्ग तथा लकार व्यवस्था) के स्थान पर भी अपेक्षाकृत अधिक सरल-सपाट व्याकरणिक तंत्र नैसर्गिक रूप से विकसित हुआ।

इस निरंतर परिवर्तित भाषिक परिवेश में प्राचीन छन्द विधान भी चरमरा गया और इन मदमाती युवा भाषाओं ने अपनी भावनाओं को नव-युग के अनुरूप एक अभिनव छन्द विधान में गूंथने का भी सफल प्रयास किया।

श्री दशम ग्रंथ का कवित्व (सवैया, कवित्त आदि नव छन्दों के अनुशासन में) कितना अभिराम रूप धारण कर लेता है, इसे इस ग्रंथ रत्न का प्रत्येक जागरूक अध्येता जानता है।

(2)

शब्द-भण्डार

मोटे तौर पर दशम ग्रंथ की भाषा के शब्द-समूह को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:-

१) **भारतीय शब्दावलि,**

तथा

२) **अभारतीय शब्दावलि।**

भारतीय शब्दावलि

यह शब्दावलि संस्कृत-परिवार से संबंधित है। क्षेत्रीय उच्चारण तथा गुरुमुखी लिपि की अपेक्षाओं के अनुरुप यह शब्दावलि पर्याप्त सरलीकृत रुप में मिलती है। यही कारण है कि कई बार इस वर्ग की तत्सम शब्दावलि को तद्भव शब्दावलि से अलगाना कठिन हो जाता है। इस वर्ग की तत्सम शब्दावलि के कुछ उल्लेखनीय शब्द ये हैं :

अलप (अल्प),

सु-अलप (स्वल्प),

अधो (अधः),

अरिहंत (अर्हंत),

आजान (आजानु),

समसत (समस्त),

स्रोणित (शोणितःरक्त),

जनम (जन्म),

कुकरम,

बचित्तर (विचित्र),

सासत्र (शास्त्र)

दिदेसन (दिशा+ईश+न)

जोगेसन (योग+ईश+न) आदि

संहित शब्दावलि

संस्कृत की रचना 'संहिति' (सन्धि) के जटिल अनुशासन का-निरपवाद रूप से- पालन करती थी। ये नियम संस्कृत शब्दों के संश्लिष्ट रूप को अधिक सघन बना देते थे। परन्तु उत्तरवर्ती भाषाओं की विश्लिष्ट प्रकृति ने इन नियमों की जकड़ से शनैः२ मुक्ति पा ही ली।

आज असंहित शब्दों की बहुलता हमारी भाषाओं की मुख्य पहचान बन चुकी है। फिर भी यत्र तत्र सन्धि की जकड़बंदी को झेलती शब्दावलि प्रायः मिल ही जाती है।

दशम ग्रंथ जी में उपलब्ध इस प्रकार की शब्दावलि एक इतिहासिक महत्व की वस्तु प्रतीत होती हैः-

स्रावगेस[1] (श्रावक+ईश)
जोगाधिकारी (योग्यः जोग+अधिकारी)
तवालय (तव+आलयः तुम्हारा घर)
असथालय (अस्थिःअस्थ+आलयःकब्र मक़बरा)
गोबरागन (गोबर+अगन। गोबर की आग)
नेति (न+इति)
नमसतं (नमस्+तं)
तुमेव (त्वम्+एव)
नमस्त्वं (नमस्+त्वम्)
छिनेक (छिन+एकः एक क्षण)
रिखीसं (ऋषि+ईशम्)

तद्भव शब्दावलि

यह एक भाषा वैज्ञानिक तथ्य है कि कोई भी भाषा केवल पारम्परिक अथवा आयातित (विदेशी) शब्दावलि पर ही निर्भर नहीं रहती। चूंकि भाषा अपने भौगोलिक परिवेश के साथ-साथ अपने प्रयोक्ता-वर्ग के उच्चारण-यंत्र के अनुरुप-सरलीकरण के अनुरोध पर-पारम्परिक अथवा आयातित शब्दावलि को अपेक्षित ध्वनि परिवर्तन के साथ (पर्याप्त काट-छांट के उपरांत) ही अपनाया करती है, इस लिए प्रत्येक भाषा में ऐसी शब्दावलि विद्यमान रहती है जिसका मूल रुप उसकी किसी स्रोत भाषा में निहित रहता है।

---

1. श्रावक (जैन धर्म का अनुयायी : सद् गृहस्थ)। सरावगी, सरौगी भी प्रचलित है।

इस कोटि की शब्दावलि भाषा की आन्तरिक क्षमता-विभिन्न स्रोतों से प्राप्त शब्दावलि को अपनी प्रकृति के अनुरूप परिवर्तित रूप में आत्मसात् करने की क्षमता-को रेखांकित करती है। इस प्रकार की शब्दावलि को तद्भव शब्दावलि कहा जाता है।

श्री दशम ग्रंथ में उपलब्ध ये तद्भव शब्द सभी दृष्टियों से

महत्वपूर्ण हैं:-

सातक (सात्विक), तामसेयं (तामसी), त्रिकालग्ग (त्रिकालज्ञ), जातन (यातना), जनमं (जन्म),लाछिआ ग्रिह (लाक्षा-गृह), मनुछ्छ (मनुष्य), वैराह (वराह), हैबार[1] (हयवर), गैबार[2] (गजवर), मछिंद्र (मत्स्येन्द्र), भुअन (भुवन), बउध (बौद्धः बुद्ध), बईद (वैद्य), दइत (दैत्य) आदि।

'नी'

स्त्रीवाची 'नी' प्रत्यय से निष्पन्न ये तद्भव रुप श्री दशम ग्रंथ में उपलब्ध हैं:-

जछ्छनी (यक्षिणी), किन्नरनी (किन्नरी), देवनी (देवी) आदि।

देशज-शब्दावलि

भाषाओं में अपनी ज़मीन से जुड़े रहने की एक सार्वभौम प्रवृत्ति पाई जाती है। अपने क्षेत्र की मिट्टी, वहां के 'रस' के साथ-साथ वहां की गंध में रची-बसी शब्दावलि एक ओर तो भाषा को ओजस्विता तथा लोकप्रियता प्रदान करती है, तो दूसरी ओर भाषा में प्रायः आ जाने वाली एक-रसता को भी समर्थ कवि-लेखक इसी प्रवृत्ति के माध्यम से तोड़ा करते हैं। इस प्रवृत्ति के अनुरूप किसी क्षेत्र विशेष के रुप रंग में ढ़ली शब्दावलि को देशज (देश्यः देशी) कहा जाता है।

अपने क्षेत्र के भौगोलिक परिवेश, वहां रहने वालों के उच्चारण तंत्र और उनके समाचार पर भी देशज शब्दावलि पर्याप्त प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत करती है। क्षेत्र विशेष के लोगों की भाषा विषयक सोच और उनकी नव-शब्द-निर्माण क्षमता का परिचय भी इसी शब्दावलि से मिलता है। वस्तुतः देशज शब्दावलि का प्रत्येक भाषा के विकास में अपना एक मौलिक योगदान रहा करता है।

---

1. हय=घोड़ा, वर=श्रेष्ठ। उत्तम घोड़ा। 'हय' को 'है' रूप लोक स्तर पर मिल चुका था। 'कनक, कामिनी, हैवर, गैवर (पंचम गुरूजी) 2. 'गज = गय, गैवर = श्रेष्ठ गयंद' भी प्रचलित।

श्री दशम ग्रंथ में प्रयुक्त 'फोकट' (व्यर्थ), 'बबाड़' (बकवास) और 'धौल' (थप्पड़) जैसे देशज शब्दों को ये दो भाषाई प्रवृत्तियां अधिक रूचिरता प्रदान करती हैं:-

अ) अनुरणनात्मक शब्दावलि

शृंगार तथा वीर आदि रसों की विभन्न मनोदशाओं (स्थितियों) को श्री दशम ग्रंथ में ध्वननात्मक वर्ण-योजना के माध्यम से-मुख्यतः देशज शब्दों के आधार पर-इस प्रकार रुपायित किया गया है:-

ढल ढल, ढालं, जिस गुल लालं,
ढमक ढोलं, तड़ सड़ तीरं

(मधुर धुनः छंद)

इसी प्रकार 'त्रिगणणं छंद' में :

'जृणणं जवालं,' त्रिणणणं तीरं' आदि अनुरणनात्मक शब्दों की सहायता से 'रस' निष्पत्ति की गई है।

उ) द्विरूक्त शब्दावलि :-

श्री दशम ग्रंथ में देशज शब्द अनेकशः द्विरूक्त रुप में प्रयुक्त किए गए हैं। एक सार्थक शब्द के साथ दूसरा निरर्थक शब्द-ध्वनि-साम्य के आधार पर रखा गया है। पखंड-पुखंड, इंद्र-विंद्र, अकट-विकट, डिंभ-विंभ आदि।

पंजाबी, हिन्दी, हरयाणवी, राजस्थानी आदि भाषाओं में इस प्रकार की द्विरूक्त शब्दावली प्रायः पाई जाती है।

साधक शब्दावलि

शब्द के मूल अर्थ को अक्षुण्ण रखते हुए उसे एक नव-आयाम प्रदान करने की एक भाषिक प्रक्रिया हमारी भाषाओं में संस्कृत युग से ही प्रचलित रही है। चूंकि इस प्रक्रिया के माध्यम से भाषा में शब्दों को एक नये रुप के साथ-साथ अर्थ विस्तार आदि कई नव-विच्छित्तियों की प्राप्ति होती है, इस लिए इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने वाले शब्दों अथवा अक्षरों को साधक शब्द (अक्षर) कहा जाता है। उपसर्ग तथा प्रत्यय इस प्रक्रिया के दो लघुतम परन्तु प्रमुख तत्व हैं।

उपसर्ग :

श्री दशम ग्रंथ की भाषा में उपलब्ध तथा भारतीय परम्परा से लिए गए ये उपसर्ग बहुत महत्वपूर्ण हैः-

'अ' (निषेधार्थक)

अ-भंग, अ- वियकत (अव्यक्त), अछिज्ज[1], (अछेद्य), अ-कपट, अ-थान (स्थान रहीतः सर्वव्यापक), अ-तान[2] (अरक्षित), अ-भेव[3] (अभेद), अ-धंध[4] (अद्वन्द्व)।

'अन' (निषेधार्थक)

अन-ब्रण (ब्रणः धाव रहित), अन-झंझ (झंझाः तूफानः रहित। शांत), अन-टुट (जिसे तोड़ा न जा सके)।

निरः त्रिः नि (निषेद्यार्थक)

निरुउकत[5], निर-बाम[6], त्रि-काम (निष्काम) त्रि-ताप (ताप रहित), त्रि-वाक (वचन अतीत), त्रि-अस्त्र, त्रि-बूझ, त्रि-लंभ, (अलभ्य), त्रि-साक[7] आदि।

'सु' (उत्तमता का बोधक)

सु-जुगत[8], सु-भछ्छ[9]

प्रत्यय

हमारी भाषाओं में प्रत्यय मुख्यतः 'धातु' अथवा शब्द के अंत में प्रयुक्त होता है। शब्द (धातु) के मुख्य अर्थ को एक नव-अर्थमत्ता प्रदान करना, प्रत्यय की भाषक अपेक्षा स्वीकार की गई है। प्रत्यय के दो प्रधान वर्ग हैं, तद्धित और कृदंत। संज्ञा शब्दों के अंत में लगने वाले प्रत्यय तद्धित और धातु के अंत में लगने प्रत्यय कृदन्त कहलाते हैं।

कृदन्त-प्रत्यय

श्री दशम ग्रंथ की भाषा में संस्कृत-परम्परा के अनुरूप ये कृदन्त प्रत्यय प्रायः प्रयुक्त हुए हैं :-

---

1. 'छिद' (संस्कृत) से विकसित। 2. 'त्राण' से विकसित। अरक्षित। 3. भेद-भेव। 'भेउ' रूपांतर 4. द्वन्द्व : दुंद : दंद : धंध : रूपांतर। 5. 'उक्ति'। वाक्-व्यापार से अतीत 6. वामा : स्त्री। घर ग्रहस्थी के झमेलों से दूर। 7. 'स्वक' (अपना) से विकसित। साक ' संबंधी संबंधी-रहित 8. 'युक्त' उत्तम रूप से युक्त। युक्ति युक्त 9. भक्ष्य। उत्तम खाद्य।

(क) अत:त ('क्त' का अवशेष। धातु+अत,त) लागत, भावत, जागत।

(ख) आत (धातु+आत) सुहात

(ग) आइआ (आगत से विकसित)। बणाइआ, घाइआ, पाइआ।

(घ) 'इ' (ल्यप्! : इ) भूलि,

(ड) 'ई' (भूतकालिक) करी,

(च) 'ए' (भूतकालिक बहुवचन) करे, परे, भरे, मरे,

(छ) 'ऐ' (अै। आज्ञाः अनुनयः विधि सूचक) सिमरीअै,

(ज) 'ओ' (क्तः तः अः ओ। यो) गवाइओ, पाइओ भयो, रहयो, बखान्यो

(झ) 'बो' ('तव्य' से विकसित। भविष्य अथवा विधि बोधक) ह्वैबो, पहिचानबो, निबारिबो।

तद्धित प्रत्यय

क) 'ई' (विशेषण) अनामी, अठामी, अभरमी, धामी, निहभरमी,

ख) 'वंत' ('वत्' से विकसित) छलवंत, आदि।

अनुस्वारांत शब्दावलि

अनुस्वार लगंतं, संस्कृत बणंतं

एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है। इस अनुस्वारांत शब्दावलि के माध्यम से तुक, लय और छन्द की अनेक अपेक्षाओं की पूर्ति की जाती है।

इस प्रवृत्ति को हमारी पांच नासिक्य ध्वनियों (ङ,ञ, ण, न, म) के विशिष्ट प्रयोग से अधिक बल मिलता रहा है। वस्तुतः हमारे कवियों ने इन ध्वनियों की सहायता से अपेक्षित वातावरण-मुख्यतः संगीतात्मकता-की सुरूचिपूर्ण सृष्टि यत्र-तत्र की है :-

बनन में, बागन में, बगरो बसंत है।

ब्रज भाषा की ऐसी पंक्तियां न केवल वाह्य (शाब्दिक आंतरिक अपित) (भाव गत) सौंदर्य को भी रुपायित करती हैं।

श्री दशम ग्रंथ की अनुस्वारांत शब्दावलि मध्कालीन काव्य-भाषा के सन्दर्भ में अत्यन्त कलात्मक तथा रस-भाव की अनन्य पोषिका के रूप में अपनी एक विशिष्ट पहचान बनाती है :-

रिषं (ऋषि), प्रभं (प्रभु), धरमं, पुनीतं, निरजुरेयं (निर्जर),नैनं, भगवानं,

कुकरम, नामय, ठामय, धरीय, टारीय, खेत, अचेत, भूम, चिर आदि।

(3)

ब्रज भाषा

ब्रज भाषा काव्य का एक उत्कृष्ट रूप श्री दशम ग्रंथ में मिलता है। टकसाली ब्रजभाषा, ब्रज के शब्दों-मुहावरों की सुरुचिपूर्ण योजना तथा ब्रज के लोकप्रिय कबित-सवैया जैसे छन्दों का हृदय-हारी उपनिबंधन जैसे तत्व श्री दशम ग्रंथ को ब्रज भाषा की एक महनीय कृति के रुप में प्रतिष्ठित करते हैं :-

कहा भयो जु दोऊ लोचन मूंदि कै, बैठि रह्यो बक धिआन लगायो।
न्हात फिरिओ लिए सात समुद्रन, लोक गयो पर लोक गवाइओ।
साच कहौं सुनि लेहु सबै, जिन प्रेम कियो तिनहि प्रभु पाइओ।

जैसे परम स्फूर्तिदायक पद्यों के माध्यम से दशम गुरु जी ने ब्रज भाषाकी पारंपरिक सगुण वादी धारा को निर्गुणवादी, तर्क-प्रधान तथा विवेचन-विश्लेषण परक दृष्टि का नव आयाम प्रदान किया। ब्रज भाषा में निर्गुणवादी विचारधारा का यह सशक्त प्रस्तवन समूचे ब्रज साहित्य में अद्वितीय कहा जा सकता है।

अपनी सामयिक दृष्टि तथा सृष्टि (खालसा) के प्रति दशम गुरु जी की प्रतिबद्धता का सहेतुक उपन्यास उन्हीं के श्री मुख से श्रवणीय है :-

जागत जोति जपै निस बासर,
एक बिना मन नैक[1] न आनै।
पूरन प्रेम प्रतीति सजे ब्रत,
गोर[2], मढी[3] मन भूलि न मानै।
...पूरन जोति जगै घट माहिं तबै
खालस ताहि नखालस[4] जानै'।

दशम गुरु जी 'खालसा' के उपकारों को इस प्रकार याद करते हैं :-

जुध्ध जिते इनही के प्रसादि, इनही के प्रसादि सु दान करै।
अघ ओघ टरै, इनही के प्रसादि, इनही की क्रिपा फुन[5] धाम भरै।
इनही के प्रसादि सु विदिआ लई, इनही की क्रिपा सभ सत्र मरै।
इनही की क्रिपा के सजे हम हैं, नहीं मों सो गरीब करोर परै।

ब्रज भाषा के काव्य सौष्ठव और जगत की नश्वरता की एकत्र विवृति इस पद्य में लक्षणीय है :-

---

1. अनेकत्त्व, नानात्व 2. कब्र 3. मठ। समाधि 4.नितांत पवित्र 5. 'पुनः'। फिर

भूम को कउन गुमान है, भूपन सो नहीं काहूके संग चले है।
है छलवंत बड़ी बसुधा, यह काहू की है, न काहू की ह्वैहै।
भुअन, भंडार, सबै बरनार, सुअंति तुझे कोऊ साथ न देहै।
आन की बात चलात हो काहे कउ, संगि के देह न संग सिधैहै।

स्पष्ट है कि श्री दशम ग्रंथ में उपलब्ध ब्रज भाषा काव्य का महत्व भाषा, प्रतिपाद्य (निर्गुणवाद) और काव्य के विभिन्न स्तरों पर कहीं भी लक्षित किया जा सकता है।

भाषा संकर

गुरु-घर में भारतीय तथा अभारतीय भाषाओं एवं उनके व्याकरणिक संरचना तत्वों के बीच-कुछ विशिष्ट सन्दर्भो में-एक नितान्त सुरूचि पूर्ण संगति बिठाने का एक अद्भुत उपक्रम लक्षित किया जा सकता है।

वस्तुतः ईसा की 12वीं शती से ही हमारी भाषाओं के साहित्य में यह प्रवृत्ति यत्र-तत्र दिखाई देने लगती है[1]। इस प्रवृत्ति को आदि गुरु नानक देव जी ने भी अपनी 'सलोक सहसक्रिती'[2] जैसी रचनाओं में यत्र-तत्र अपनाया है।

अरबी-फरसी के शब्दों, उपसर्गों तथा प्रत्ययों के साथ भारतीय शब्दावलि के संगुफन से निर्मित भाषा-संकर के ये प्रयोग दशम ग्रंथ में दृष्टव्य हैं :-

(क) भारतीय उपसर्ग+विदेशी शब्द

अ मजब (मज़हबी झंझटों से दूर),

अन रंज (रंज रहितः शांत),

त्रि सरीक (अतुल) आदि।

(ख) विदेशी उपसर्ग + भारतीय शब्द

बे अंत (अनंत। बिआंत भी मिलता है)।

(ग) भारतीय शब्द-युगल+आन (मध्य प्रत्यय) :

राजान राज (राजाओं का राजा)

---

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने (हमारी साहित्यिक समस्याए और पं. बेचरदास जी ने गुजराती भाष जी उत्क्रांति में इस प्रवृत्ति को लक्षित किया है। पश्चिमी विद्वानों-मुख्यतः पूसें , स्टेन कोनो, जॉनस्टन, एजर्टन आदि ने वैदिकी, संस्कृत, पाली प्राकृत आदि भाषाओं में भाषा संकर की इस प्रवृत्ति का अनुसंधान किया है। हमारे रासो ग्रंथों, विद्यापति, कबीर, दादू और मलूकदास की रचनाओं में भी भाषा-संकर के अनेक उदाहरण मिलते हैं। 2. देखिए : 'सलोक सहसक्रिती' लेखक डॉ. राजगुरू (पंजाबी) आलोचना : 1970

रंकान रंक (अत्यंत दरिद्र),

भानान भान (भानुः भान। सूर्यों का सूर्य)।

(घ) भारतीय शब्द+अल-उल (मध्य प्रत्यय)

समसतुल निवास,

समसतुल सलाम

हमेशुल रवंन ('रवान' : गति। सदैव गतिशील)

बहिश्तुल निवास (स्वर्गस्थ)

(ङ) विदेशी+भारतीय शब्द (सन्धि)

अजबाक्रित (अजब आकृति)

(च) विदेशी शब्द युगल : आन

शाहान शाह (शाहों का शाह। शहनशाह) आदि।

दशम गुरु जी फारसी भाषा के अत्यंत सशक्त कवि थे। उनकी रचनाओं में फ़ारसी (अरबी) शब्दों-उपसर्गों-प्रत्ययों की उपस्थिति स्वाभाविक ही है। इस भाषा वैविध्य ने श्री दशम ग्रंथ जी की भाषा तथा प्रतिपाद्य को अमित गरिमा प्रदान की है।

Dedicated to the merciful and magnanimous soul
BABA VIRSA SINGH JI SAHIB,
the preceptor founder of GOBIND SADAN



This series of Books is being prepared and published with His blessings and benevolence.